सोलह महासती कथानक प्रथम खण्ड

सत्य का अमिट सौन्दर्य

मुनि मनितप्रभसागर

सोलह महासती कथानक प्रथम खण्ड

सत्य का अमिट सौन्दर्य

मुनि मनितप्रभसागर

जहाज मंदिर प्रकाशन पुष्प
154

नारी जाति के गौरवशाली पृष्ठ

पावन सानिध्य -
पूज्य आचार्य श्री जिनमणिप्रभसूरीश्वरजी म. सा.

लेखन
मुनि मनितप्रभसागर

सम्पादन
साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थल
श्री जिनकांतिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट
जहाज मंदिर
माण्डवला - 343042 , जिला - जालोर (राज)
फोन - 02973 - 256107, 9649640451
ईमेल - jahaj_mandir@yahoo.co.in

प्राप्ति स्थल
जिनहरि विहार धर्मशाला
तलेटी रोड़, पालीताणा - 364270
फोन: 02848-252653, 9427063069
ईमेल - jinharivihar@gmail.com

प्रकाशन वर्ष - 2013
प्रथम संस्करण - 1000 (2013)
द्वितीय संस्करण - 1000 (2016)
मुद्रण मूल्य - 105 रूपये
विक्रय मूल्य - 50 रूपये (श्रुत सेवार्थ)

समर्पण

चिंतन के श्रृंगार से अलंकृत

प्रवचन के पुष्पहार से सुवासित

जीवन के दिवाकर से प्रकाशित

आत्म पथ - गामिनी

वीर पथ- अनुयायिनी

सोलह सतियों

को

अर्पित - समर्पित

मुनि मनितप्रभसागर

Please... Stop

आधुकनिकता का नशा...!
भौतिकता की चकाचौंध...!
स्वच्छंदता का वातावरण...!
नारी की यह अंधी दौड न जाने कहाँ जाकर समाप्त होगी !
इस पथ में दिखते है, फूल... पर बिछी है शूल !
वस्त्र में शस्त्र है... मुस्कान मे बेईमानी है...!
जागों... नारियाँ जागों ! तुम समाज का सौन्दर्य हो !
शील, संस्कार और सेवा की प्रतिमूर्ति हो, बशर्ते
अपने आप को बदलों !
सोहल सतियों का यह जादुभरा... आकर्षक... प्यारा
उपहार अपने पास रखो !
जानो... पहचानो अपनी अस्मिता को !
देखो... पाओ अपने गौरव को !

कृपया

- पुस्तक को झूठे मुँह न पढे। • पुस्तक को रद्दी में न बेचें। • पुस्तक की आशातना न करें।
- पुस्तक को जमीन पर न रखें। • पुस्तक को झूठे हाथ न लगावें। • पुस्तक के प्रति श्रद्धाशील बने रहे।

श्रुत सहभागी

पूज्य बहिन म. साध्वी डॉ. **विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.**

की सुशिष्या

विदुषी साध्वी डॉ. **नीलांजनाश्रीजी म.सा.**

साध्वी **श्री दीप्तिप्रज्ञाश्रीजी म.सा.**, साध्वी **श्री विभांजनाश्रीजी म.सा.**

शासन प्रभावक (2015) चातुर्मास के उपलक्ष में

श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक संघ

श्री पार्श्वनाथ जैन बगीचा कार्यालय

सदर बाजार

पो.- राजनांदगाँव - 491441 (छ.ग.)

सूचना :

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन ज्ञान द्रव्य से होने से श्रावक संघ मूल्य चुकाकर उपयोग करें।

अनुक्रमणिका

• मंगलम् — पेज नं. 07
• प्रशंसनम् — पेज नं. 08
• ये गौरवशाली पृष्ठ — पेज नं. 12

1. महासती चंदनबाला — पेज नं. 19
2. महासती मृगावती — पेज नं. 59
3. महासती प्रभावती — पेज नं. 85
4. महासती कुन्ती — पेज नं. 97
5. महासती सुलसा — पेज नं. 109
6. महासती दमयन्ती — पेज नं. 131

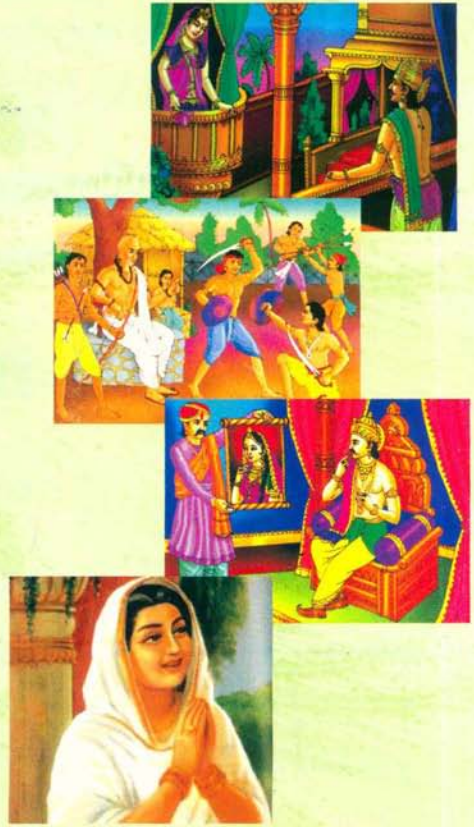

मंगलम्

सिद्धों को छोडकर सभी का जीवन अपने आप में अधूरा है। वे धन्यभागी हैं, जिन्हें अपने अधूरेपन का बोध हो जाता है। सच तो यह है कि अपने अधूरेपन का बोध होना और पूर्ण होने के लिये प्रयास करना ही सम्यक्त्व की प्राप्ति है।

उन महापुरूषों का जीवन हमारे लिये परम आदर्श हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट आचरण व साधना के द्वारा अपने अन्तर के पूर्णत्व को पा लिया या प्राप्ति के निकट पहुँच गये।

प्रिय मुनि मनितप्रभ की इस नई पुस्तक में उन सोलह महासतियों की कथाऐं हैं, जिन्होंने इन्हीं गुणों के पारगामी होकर पूर्णत्व पाया या पूर्णत्व प्राप्त करने का वरदान पा लिया।

ये कथाऐं केवल कथाऐं नहीं हैं, अपितु जीवन का एक आदर्श है। मन का सुख और शरीर की अमीरी उनके लिये तुच्छ थी, उन्हें प्रेम था तो अपनी आत्मा से, अपनी दृढ़ता से, अपने शील से! सच में आराधना, साधना, संयम, त्याग, समता, सहनशीलता, दृढ़ता, शील... ये वे गुण हैं, जिनसे आराधक निश्चित ही मंजिल को पा लेते हैं।

ये कथाऐं समझौते की कहानियाँ नहीं हैं, ये कथाऐं न्यौछावर हो जाने की कथाऐं हैं। उन्होंने शील पर अपना जीवन न्यौछावर कर दिया... अपने सारे सुख न्यौछावर कर दिये ! शान्त चित्त से इन्हें पढना है और अपनी आत्म जागृति के साथ इन्हें जोडते हुए अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेना है, इसी में पुरूषार्थ की सार्थकता है।

मुनि मनितप्रभ को संयम ग्रहण किये बहुत लम्बा समय नहीं बीता है, पर उसकी संयम-रमणता, संयम-परिपक्वता अपने आपमें अनुमोदनीय आदर्श है। लगातार चलते उसके स्वाध्याय-प्रवाह का ही यह परिणाम है कि वह निरन्तर आदर्श और प्रेरक ग्रन्थों का सर्जन कर रहा है। उसके द्वारा आलेखित जैन जीवन शैली हजारों हजारों लोगों द्वारा प्रशंसित हुई, यह अपने आप में गौरव की बात है।

मेरी कामना है कि उसके द्वारा इसी प्रकार सर्जन श्रृंखला निरन्तर प्रवहमान रहेगी।

आचार्य जिनमणिप्रभसूरीश्वर

प्रशसंनम्

नारी सृष्टि का अनुपम सौंदर्य एवं जीवन का अनूठा माधुर्य है। नारी सृजन–चेतना की प्रतीक है। यद्यपि सृष्टि के निर्माण में पुरूष और नारी, ये दो मौलिक तत्त्व निहित हैं तथापि विश्व संरचना में आधारभूत तत्त्व नारी ही है। सृजनशीलता का यह विशिष्ट वरदान उसे जन्मजात प्राप्त है। पुत्री के रूप में निर्दोष अठखेलियाँ करते हुए माता–पिता के जीवन को सरस बनाना, बहिन के रूप में अपनत्व और स्नेह की सुवास बिखेरना, पत्नी के रूप में समर्पण और शील की उजास भरना, माता के रूप में वात्सल्य और ममता की मीठास भरना, बहु के रूप में सेवा–सहिष्णुता की उष्मा देना, दादी के रूप में संपूर्ण परिवार को परस्पर प्रेम, सामंजस्य, सौहार्द्र और एकता के सूत्र में बांधकर सुसंस्कारों का सिंचन करना, ये सब भारतीय नारी की विविध भूमिकाएँ हैं। इन सब भूमिकाओं को चीवट एवं जीवटपूर्वक निभाना नारी की दीर्घ दृष्टि, धृति और अनुभवपरक शक्ति का सशक्त प्रमाण है।

नारी का सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक गौरवमय पद है – 'मातृपद'। माँ के रूप में वह महान् ऋषि–मुनियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की ही जन्मदात्री नहीं है अपितु संसार की तीर्थंकर जैसी सर्वोत्कृष्ट कृति के निर्माण का गुरूतर गौरव भी नारी को ही प्राप्त है। कोई महान् माता ही किसी महापुरूष को जन्म देकर अपने मातृत्त्व को महिमामंडित कर सकती है। एक महापुरूष को अपने गर्भ में धारण करने से पूर्व माँ को बहुत तपना और खपना पडता है। एक शिशु को जन्म देकर वह जन्मदात्री कहलाती है परंतु जीवन निर्मात्री तो तब कहलाती है, जब किसी महान् व्यक्तित्व के निर्माण में आधार स्तम्भ बनती है।

सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाली धरती को हम 'माता' के पद से अभिषिक्त करते हैं। धरती मातां न केवल निर्मात्री कहलाती है अपितु जीवनदात्री एवं संरक्षणदात्री भी कहलाती है। वह अपने कण–कण से अन्न पैदा करती है, संरक्षण और विस्तार देती है और सबके लिए उसका विसर्जन करके समर्पण और त्याग की खुश्बू बिखेरती है।

माता की भी यही भूमिका है। वह अपनी संतान को न केवल जन्म देती है अपितु शिक्षित–प्रशिक्षित करती हुई समाज एवं देश की सेवा में हँसते–हँसते समर्पित कर देती है। व्यक्तित्व निर्माण की इस महनीय भूमिका में त्रासदी, कष्ट और बाधाओं को झेलकर भी वह न हताश होती है, न निराश होती है। न कोई गिला शिकवा करती है, न आँसू बहाती है। तर्जना और वर्जना में भी वह अपने सुख का स्रोत तलाश लेती है। उस सुख की तुलना में संसार की शोहरत और दौलत भी उसे तुच्छ और नगण्य प्रतीत होती है।

निश्चित ही माँ की ममता और समता का कोई सानी नहीं हो सकता। वह सच्चे अर्थों में निर्मात्री बनकर

नवसृजन के नये स्वस्तिक उकेरती है। कभी पुत्र के रूप में वह धर्मवीर, त्यागवीर, दानवीर, शूरवीर, महावीर का निर्माण करती है तो कभी पुत्री के रूप में जगन्माता त्रिशला, महासती कौशल्या, सीता, चंदनबाला और पाहिनी का।

नारी विश्व की महान् संपदा है तो अपरिमेय शक्ति भी है। इसमें निर्माण की अनोखी कला है तो विनाश की शक्ति भी निहित है। अपनी संतान के लालन–पालन में वह जितनी ममतामयी और वात्सल्यमयी है, सामाजिक बुराईयों के प्रतिकार एवं दानवता के दलन में दुर्गा और चण्डी का रूप भी धारण कर सकती है। उसका हृदय फूल सा कोमल होने पर भी समय आने पर वह तलवार और भाले को उठाकर झांसी की रानी का शौर्य और पराक्रम भी दिखा सकती है।

विद्या, धन और शक्ति, ये तीनों जीवन विकास के मूलभूत तत्त्व हैं। इनकी प्रतीक देवियाँ नारी–जाति का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। विद्या की अधिष्ठात्री माँ शारदा, धन की अधिष्ठात्री माँ लक्ष्मी, शक्ति की अधिष्ठात्री माँ दुर्गा के रूपों में नारी शक्ति ही प्रतिष्ठित एवं पूजित है। विश्व की प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक परम्पराओं में नारी शक्ति की पूजा–अर्चना किसी न किसी रूप में होती ही रही है। वैदिक परम्परा में दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वैष्णवी, नारायणी तो जैन धर्म में श्रुतदेवी व शासनदेवियों के रूप में वह अर्चित और आराधित है।

प्राचीन वैदिक परंपरा में याज्ञवल्क्य, अगस्त्य, वशिष्ठ आदि प्रज्ञाशील मंत्र द्रष्टा ऋषियों की भाँति सूर्या, सावित्री, लोपामुद्रा, घोषा आदि परम विदुषी मंत्रद्रष्टा ऋषिकाऐं भी हुई हैं। उपनिषद् की गार्गी, रामायण की अनुसूया, महाभारत की सुलम्भा की जागृत अंतःप्रज्ञा पर संपूर्ण नारी जगत् को गौरव है। वैदिक परंपरा की भाँति जैन परंपरा भी विदुषी प्रतिभाशाली नारियों से समृद्ध रही है। युग निर्माता भगवान ऋषभ ने ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में पुत्र–पुत्रियों में कोई भेद नहीं किया। उन्होंने लिपि की सर्वप्रथम शिक्षा ब्राह्मी को एवं गणित की शिक्षा सुन्दरी को दी। महावीर युग की श्राविका जयंती प्रखर दार्शनिक और तत्व ज्ञानप्रवीणा थी। उसके द्वारा की गयी जिज्ञासाओं का समाधान स्वयं भगवान महावीर ने किया था। नंदराज के प्रधानमंत्री शकडाल की सात पुत्रियाँ और स्थूलिभद्र की बहिने इतनी मेधावी थी कि वे किसी भी अपठित, अश्रुत काव्य, ग्रंथ को क्रमशः एक से सात बार सुनकर अस्खलित रूप से दुहरा देती थी।

प्रकाण्ड पंडित आचार्य हरिभद्रसूरि को प्रतिबोध देने वाली याकिनी महत्तरा थी। हरिभद्रसूरि ने अपने प्रत्येक ग्रंथ में उनका उल्लेख गौरव एवं श्रद्धा के साथ किया है।

उपरोक्त संदर्भों से यह ज्ञात होता हैं कि प्राचीन समय में बौद्धिक विकास और शिक्षा के क्षेत्र में भी भारतीय नारी ने अपनी भरपूर क्षमता का परिचय दिया था। 20वीं सदी से आज तक सामाजिक, राष्ट्रीय, औद्योगिक, प्रशासनिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, शैक्षणिक, तकनीकी, प्रत्येक क्षेत्र में नारी ने आश्चर्यकारी कीर्तिमान स्थापित किये हैं।

आधुनिक नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरूष के साथ कदम से कदम और कंधे से कंधा मिलाकर जो काम कर रही है, उसकी प्रतिभा और क्षमता का लोहा पूरी दुनिया मान रही है। रूढियों, अर्थहीन परम्पराओं, मानसिक संकीर्णताओं के चक्रव्यूह को भेद कर उच्चतम पदों को हासिल करके उसने अपने अप्रतिम पौरूष, साहस और योग्यता का बखूबी परिचय दिया है।

वर्तमान समाज के दर्पण में नारी के दो रूप प्रतिबिंबित हो रहे हैं – प्रथम रूप है मर्यादा और परंपरा के सांचे में ढला आदर्श रूप। शिक्षित या अशिक्षित परंतु शालीन वेशभूषा, बडे बुजुर्गों का सम्मान करने की भावना, सेवा–सहकार की जीवंत प्रतिमा, अनुशासित, मर्यादित, परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित, एक सुघड गृहिणि – यह भारतीय नारी का आदर्श रूप है तो साथ ही एक दूसरा चित्र भी उभर रहा है – उच्च डिग्रियाँ, मोबाईल, कम्प्यूटर, इंटरनेट, जीन्स, मिनी स्कर्ट्स की संस्कृति, जिसने उसे विकृति के गर्त्त में धकेल दिया है।

आज की आधुनिक शिक्षित और प्रबुद्ध नारी पश्चिमी अंधानुकरण में अपनी लोक–लज्जा, मर्यादा, विवेक एवं संस्कारों को ताक पर रखकर दिन–प्रतिदिन उच्छ्रंखल एवं उद्दण्ड होती जा रही है। को–एजुकेशन, बॉय़फ्रेन्ड, पिक्चर, किटी पार्टी, क्लब, होटल की संस्कृति ने नारी की प्रतिष्ठा और मान–मर्यादा को धूमिल करके उसे नारा बना दिया है। राजनीति के गलियारों में गोते लगाती हुई नारी घर–परिवार के प्रति अपने दायित्व से सर्वथा विमुख हो रही है। आवश्यकता है वह अपने आदर्श और गौरवभरे अतीत के रोशनदान खोलकर निहारें अपना गरिमापूर्ण स्वरूप। अतीत में जंगलों की खाक छानना, दर–दर भटकना, दासत्व का जीवन जीना उसे मंजूर था परंतु अपने शील और सदाचार का सौदा किसी भी किंमत पर मंजूर न था। जिन्होंने अपनी अस्मिता की बलि वेदी पर हँसते–हँसते प्राणों को न्यौछावर कर दिया, वे ही दीपशिखाएँ महासतियों के रूप में इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ बन वर्तमान की प्रेरणा बनी हुई है।

वैसे तो प्रत्येक युग सतीत्व के उजाले से आलोकित होता रहा है परंतु भगवान ऋषभ से लेकर महावीर पर्यंत उज्ज्वल व्यक्तित्व से परिपूर्ण ऐसी सोलह महासतियाँ हुई हैं जिनका जीवन संपूर्ण नारी समाज के लिए प्रेरणा का

आलोक बिखेर रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णित सोलह सतियों का जीवन अत्यंत उदात्त, भव्य एवं दिव्य है। महासती सीता, जो राज सुखों में पली–बढी परंतु पलभर में वनवास का कठोर जीवन हँसते–हँसते स्वीकार कर लिया। महासती सुभद्रा ने कच्चे धागे से बंधी छलनी द्वारा कुएँ से पानी निकाला और चम्पा द्वार पर उसका छिडकाव करते हुए न केवल द्वारोद्घाटन किया अपितु कुशंका और संदेह से दुर्गंधित वातावरण को अपनी शील की खुश्बू से सुवासित कर दिया। चन्दनबाला, द्रौपदी, दमयंती आदि सभी महासतियाँ अपने आप में एक–एक इतिहास का उज्ज्वल पृष्ठ है, जिन्हें पढकर नारी जगत का ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति का माथा सहजतः नत हो जाता है।

सोलह महासतियों के सम्पूर्ण कथानक को अपने शब्दों की माला में पिरोया है मेरे प्रिय अनुज प्रज्ञावान् अप्रमत्त साधक मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म.सा. ने। तीन खण्डों मे विभक्त महासतियों का जीवन दर्शन यद्यपि बहुत ही अनूठा और उजला है तथापि मुनिश्री की सधी हुई, मंजी हुई लेखनी का स्पर्श पाकर और अधिक कांतिमान बन गया है। उनकी प्रवाहपूर्ण लेखनी में चमत्कारिक सरसता एवं कमनीयता है, जो पाठक के हृदय को सहज ही मोह लेती है। उनकी स्वाध्याय एवं लेखन यात्रा अनेक पडाव तय करती हुई आज महासती कथानक–लेखन के मुकाम पर पहुँची है। इन क्षणों मे मेरा हृदय गौरव मिश्रित प्रसन्नता से गद्‌गद् है। अनुज मुनि के साधकीय जीवन के प्रति मेरी असीम शुभकामनाएँ समर्पित हैं। मुनि मनितप्रभजी साहित्य यात्रा के नित नये सोपान तय करते हुए जिनशासन की प्रभावना करें। ओम् शांति ....

साध्वी नीलांजनाश्री

साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री

ये गौरवशाली पृष्ठ

जैन संस्कृति में सत्य और शील की एक अक्षुण्ण एवं समृद्ध परम्परा रही है । इस संस्कृति की अपनी एक अलग पहचान है, धर्म के संस्कारों से अनुप्राणित जीवन शैली है और गौरवपूर्ण विरासत भी है।

पुरूष और स्त्री जीवन रूपी रथ के दो अनिवार्य चक्र (पहिये) हैं । यदि एक चक्र क्षतिग्रस्त हो जाये तो रथ प्रगति की ओर गति नहीं कर सकता। किसी भी पक्षी को आकाश की अमाप ऊँचाइयों का स्पर्श करने के लिये दो पंखों की जरूरत होती है।

पुरूष और स्त्री, दोनों परस्परपूरक हैं, अन्योन्य आश्रित हैं। वे एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बनते हैं तो पारस्परिक गौरव का निर्वहन भी करते हैं।

नारी का बचपन पिता की छाँव में बीतता है, युवानी पति के सहारे गुजरती है और बुढ़ापा पुत्र की कृतज्ञता तले संवरता है। इस प्रकार पुरूष स्त्री के सम्पूर्ण जीवन का आधार स्तंभ बनता है तो इसका दूसरा पहलू यह भी है कि हर पुरूष के विकास में स्त्री का अपरिहार्य स्थान है। वह माँ, पत्नी, बहिन, पुत्री आदि भूमिकाओं को सम्यग्रूप से निभाती हुई पुरूष को सर्वश्रेष्ठ सत्ता भी उपलब्ध करवाती है।

नारी कभी मरूदेवा से लगाकर त्रिशला पर्यन्त माँ के रूप में तीर्थंकरों को जन्म देती है, मदनरेखा, प्रभावती, मृगावती के रूप में पति को धर्म का बोध देकर उनका जीवन संवारती है तो कभी ब्राह्मी, सुन्दरी, यक्षा के रूप में भाई को प्रतिबोध देकर अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य निभाती है, इतना ही नहीं, वह अपनी ममता को विस्तृत आकाश देकर पुत्रों को शासन की झोली में सौंपकर आर्यरक्षितसूरि, दादा जिनदत्तसूरि, हेमचन्द्राचार्य, मणिधारी जिनचंद्रसूरि आदि के रूप में रत्न भी प्रदान करती है।

नारी न तो भोग विलास का साधन है, न अबला और दासी है। वह वात्सल्य की प्रतिमा, संकल्प की देवी और प्रकृति की पावन मंदाकिनी है।

किसी भी देश, समाज या धर्म के निर्माण और विकास में नारी एक महत्त्वपूर्ण घटक है। उसका अपना एक गौरवशाली इतिहास रहा है। महात्मा गांधी कहा करते थे कि 'माँ ' बालक का पहला गुरु और गुरुकुल है। जो बालक विद्यालय में अनेक वर्षों में सीखता है, वह माँ की कोंख में पलते-पलते, गोद में खेलते-खेलते और मुस्कान को झेलते-झेलते कुछ वर्षों में ही सीख जाता है।

नारी केवल नारी नहीं है, वह सृष्टि का सौन्दर्य, संस्कारों की सुवास और संस्कृति का संगीत है। शास्त्रकारों ने पुरूष और स्त्री के सात-सात प्रकृति प्रदत्त गुण बताये हैं जिनमें पुरूष को कठोरता का प्रतीक और स्त्री को कोमलता की प्रतिमा कहा है।

पुरूष ने भले ही स्त्री का भरपूर शोषण किया, उसके अधिकारों को छीना, प्रताड़नाएँ दी पर वास्तविकता तो यही है कि स्त्री किसी भी दृष्टि से हेय, तुच्छ, हीन और दीन नहीं है। उसने सदा से पुरूष वर्ग पर उपकार ही किया है।

नारी पुरूष के पाषाण-हृदय, स्वच्छन्द मनोवृत्ति और मानसिक उद्दण्डता को अपने संयत, सौम्य और सहनशील व्यवहार के द्वारा प्रभावित ही नहीं करती अपितु रूपान्तरित भी करती है। अपने स्नेहिल साहचर्य से उसके कठोर स्वभाव को मधुर बनाती है, सेवा, त्याग और शील के माध्यम से उसकी पाशविक जीवन शैली को दैविक शक्तियों में बदलती है। सचमुच स्त्री देवी रूपा है, जो शील और संस्कारों की सुरक्षा में स्वर्गीय संपदा को भी तिनके की भाँति ठुकरा देती है।

प्रस्तुत प्रकाशन नारी के शील से सुवासित, अर्हतों द्वारा प्रशंसित और नरेन्द्रों-देवेन्द्रों द्वारा अर्चित अद्वितीय गरिमापूर्ण दस्तावेज है। जैन धर्म, दर्शन और जीवन अन्य परम्पराओं, धर्मों और सिद्धान्तों से सर्वथा विलक्षण एवं अनूठा है। यहाँ स्त्री को पुरूष के समान अधिकार दिये गये हैं, वह चाहे तो विवाह करके गृहस्थ धर्म निभाएँ, और चाहे तो आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके मुनि-पथ का चयन करे।

अनादिकाल से प्रवर्तमान इस जैन संघ में हर तीर्थंकर के शासनकाल में हजारों-लाखों की संख्या में श्रमणियाँ एवं श्राविकाएँ हुई हैं। परमात्मा ऋषभ से लगाकर आज तक सतियों-महासतियों की लम्बी परम्परा रही है। अनेक श्रमणियाँ शील के बल पर मुक्ति की ओर अग्रसर हुई तो बड़ी संख्या में सुलसा, रेवती, जयन्ती, मंदोदरी के नाम से

सुश्राविका के रूप में प्रसिद्ध हुई।

जैन धर्म में दो प्रकार की सतियाँ हुई हैं। प्रथम स्थान पर वे हैं, जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया, और दूसरे स्थान पर वे हैं, जो विपत्ति और मृत्यु भय के क्षणों में भी एक पतिव्रत से चलायमान नहीं हुई।

यद्यपि ब्रह्मचर्य व्रत पालने वाले विजय सेठ, सुदर्शन सेठ, पेथड़ शाह आदि अनेक श्रावक हुए पर उन्हें महासती की तरह किसी भी प्रकार का विशेष अलंकरण नहीं दिया गया। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों के शासन में शील-सदाचार, त्याग-विराग, धैर्य व सौन्दर्य की स्वामिनी सोलह महाविभूतियाँ हुई जो इतिहास का गौरवशाली अमिट शिलालेख बन गयी।

अब प्रश्न यह है कि सतियाँ सोलह ही क्यों?

यद्यपि गद्य-पद्य रचनाकारों ने सतियों की अलग अलग संख्या बतायी हैं और उनका नामोल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। सतहरवीं सदी में रचित रचनाओं में विशेषतः चौबीस सतियों के नाम ही मिलते हैं। किसी ने स्वरचित ढाल में एक सौ आठ सतियों के नाम लिखे हैं तो किसी ने चौसठ नामों का उल्लेख किया है। वास्तविकता तो यह है कि आज तक हजारों सतियाँ हो चुकी परन्तु साहित्यकारों को जो ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगी या जिनका पुण्योदय प्रबल था अथवा जिनका पवित्र चरित्र अधिकतम प्रेरणास्पद लगा, वे सोलह सतियाँ विशेषतः जनप्रिय-जगप्रसिद्ध हो गयी।

आज का लोकमानस सोलह सतियों से अधिक प्रभावित है। नीचे जो छन्द दिया जा रहा है, उसे अनेक लोग अपनी प्रभात-प्रार्थना में शामिल करते हैं-

ब्राह्मी चंदनबालिका भगवती, राजीमती द्रौपदी ।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती नलस्यदयिता, चूला प्रभावत्यपि ।
पद्मावत्यपि सुन्दरी प्रतिदिनं, कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

इन सोलह सतियों में से ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला आदि जैन समाज में ही मान्य हैं तो दमयन्ती, कौशल्या,

सीता, कुन्ती, द्रौपदी आदि को जैनेतर समाज में भी श्रद्धास्पद स्थान प्राप्त है। कुछ बाल ब्रह्मचारिणी हैं तो कछ गृहस्थ धर्म को निभाती हुई एक पतिव्रता है। सुभद्रा, सीता, द्रौपदी, शिवा आदि के जीवन में शील परीक्षा के कठिन क्षण भी उपस्थित हुए तो कुछ का जीवन सामान्य है। कुछ स्वर्गगामिनी हुई तो कुछ मोक्ष पधारी। कुछ का पूर्वभव वृत्तान्त उपलब्ध है तो कुछ का नहीं।

इन सोलह सतियों में से अधिकांश पारिवारिक पृष्ठ भूमि से भी परस्पर जुड़ी हुई हैं । ब्राह्मा-सुन्दरी और प्रभावती- पद्मावती-मृगावती-शिवा, ये सगी बहिने थी तो मृगावती और चन्दनबाला में मौसी-भाणजी का रिश्ता था । इससे भी अधिक कौशाल्या-सीता व कुन्ती-द्रौपदी में सासु-बहु का सम्बन्ध था ।

सोलह सतियों में से ब्राह्मी और सुन्दरी आदिनाथ प्रभु के शासन में एवं दमयन्ती धर्मनाथ प्रभु के शासन में हुई। कौशल्या व सीता मुनिसुव्रत स्वामी के एवं राजीमती, कुन्ती व द्रौपदी परमात्मा अरिष्टनेमि के शासनकाल में हुई। शेष आठ सतियाँ परमात्मा महावीर के शासन में हुई, जिन्होंने अपनी संस्कार की सुवास से संपूर्ण धर्मसंघ को महकाया।

ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दनबाला, सुलसा, शिवा, पुष्पचूला, प्रभावती, पद्मावती का आवश्यक निर्युक्ति में, राजीमती का दशवैकालिक निर्युक्ति व उत्तराध्ययन सूत्र में, कुन्ती और द्रौपदी का ज्ञाताधर्मकथांग में, कौशल्या व सीता का त्रिषष्ठिशलाका पुरूष में, मृगावती का आवश्यक निर्युक्ति व दशवैकालिक निर्युक्ति में, सुभद्रा का दशवैकालिक निर्युक्ति में जीवन वृत्तान्त उपलब्ध होता है।

ग्रन्थकारों ने ही नहीं, अनेक कवियों ने भी महासतियों पर कलम चलाकर अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्ति दी है। संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी, मारवाड़ी आदि भाषाओं में अनेक ग्रन्थ निर्मित हुए, जैसे उपदेशमाला, पुष्पमाला, धर्मोपदेश माला, शीलोपदेश माला, दान-शील-तप-भावना कुलक आदि।

एक-एक सती पर अलग-अलग कवियों ने चौपाई, रास, राज्झाय, स्तवन, गीत, ढाल, छंद रचे, जिनसे प्रेरणा लेकर अनेक व्यक्तियों ने अपनी जीवन शैली में संशोधन-परिमार्जन किया।

जैन-निर्माण, गोत्र निर्माण आदि शासन प्रभावक कार्यों की भाँति अभिनव साहित्य निर्माण में खरतरगच्छ का अनुपम स्थान रहा है । इस गच्छ के धुरन्धर प्रकाण्ड विद्वान् मुनिवृंद ने आगम, टीका, न्याय, ज्योतिष, अलंकरण, छन्द,

व्याकरण, प्रकरण, नीति, वैद्यक, नाट्य, कर्म, सिद्धान्त, योग, ध्यान, आयुर्वेद, मंत्र, कथा, कोष, दर्शन आदि विषयों पर जिस प्रकार अपनी अजस्र लेखिनी का प्रयोग किया, वैसे ही इन सोलह महासतियों पर भी कलम चलाकर अपनी श्रद्धा एवं उनकी महत्ता को अभिव्यक्ति दी।

16वीं-17वीं-18वीं शताब्दी में हुए आचार्य जिनचन्द्रसूरि, जिनराजसूरि, जिनसमुद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, जिनगुणप्रभसूरि, जिनरंगसूरि, उपाध्याय समयसुन्दर, उपाध्याय कनककीर्ति, उपाध्याय हेमनन्दन, उपाध्याय रघुपति, उपाध्याय विद्याकीर्ति, उपाध्याय धर्मवर्द्धन, जिनहर्षगणि, विनयमेरूगणि, चन्द्रकीर्तिगण, वाचक अमरसिंधु, आसिगु, केशवदास आदि ने शील की सुवास से ओतप्रोत सोलह सतियों पर ग्रंथ, चौपाई, रास, बारहमासा, गीत, धमाल, पद, ढाल, द्रुपद, सज्झाय, स्तवन, स्वाध्याय, काव्य, छंद आदि निर्माण करके अपनी लेखन क्षमता को धन्य बनाया।

इसी कड़ी में खरतरगच्छ विभूषण महामहोपाध्याय श्री समयसुन्दर ने द्रौपदी संहरण चारित्र ग्रंथ एवं गुणविनयोपाध्याय ने नलदमयन्ती कथा चम्पू टीका के द्वारा अपनी आस्था को मधुर स्वर दिये। लेखकों की इस सुदीर्घ नामावली के उज्ज्वल आलोक में यह अत्यन्त स्पष्ट है कि सोलह सतियों का चारित्र पवित्रता से मण्डित रहा है ।

इस सोलह महासती के उपयोगी कथानक को कलेवर विस्तार के कारण तीन खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है । प्रथम खण्ड, जिसका नाम है-**सत्य का अमिट सौन्दर्य,** उसमें चंदनबाला, मृगावती, प्रभावती, कुन्ती, दमयन्ती और सुलसा,के प्रेरणास्पद जीवन-वृत्त का शब्दांकन है । **'शील के अमिट शिलालेख'** नामक द्वितीय खण्ड में सीता, सुभद्रा और शिवा के गौरव-वैभव का प्रस्तुतीकरण है । तृतीय खण्ड, जो **'समय के अमिट हस्ताक्षर'** ब्राह्मी, सुन्दरी, राजीमति, पद्मावती, कौशल्या, द्रौपदी, पुष्पचूला के नाम से प्रकाशित हो रहा है-उसमें की गरिमामयी यशोगाथा का विश्लेषण है।

यद्यपि सोलह की संख्या रूढ-सी हो गयी है पर इनके अतिरिक्त चेलना, ऋषिदत्ता, अंजना, नर्मदा सुन्दरी, मलयासुंदरी, मयणासुंदरी, मनोरमा, मदनरेखा, जयन्ती, रूक्मिणी, सत्यभामा, सुज्येष्ठा आदि का पावन जीवन भी अत्यन्त प्रेरणास्पद है। उनको लेकर एक ग्रन्थ का लेखन करना अपने आप में श्लाघनीय कार्य होगा।

यद्यपि मध्यकाल में मृत पति के साथ चिता में जीवित आहूति देने वाली नारियाँ भी सती के रूप में प्रसिद्ध हुई

पर जैन शास्त्रकारों को इस प्रकार से सतीत्व या महासतीत्व को परिभाषित करना मान्य नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करें कि हजारों-लाखों-करोड़ों वर्षों पहले हुई सन्नारियों का जीवन-शब्दांकन वर्तमान के संदर्भ में कितना प्रासंगिक है तो प्रत्युत्तर अत्यन्त स्पष्ट है। शील, चारित्र और संस्कारों की आभा से ओतप्रोत इस प्रकाशन की महत्ता आज के इस विकृत, विषम और दुषम काल में अधिक बढ़ गयी है, जब नारी पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करती हुई अपनी अनमोल जीवन संपदा को मामूली, मूल्यहीन और महत्त्वहीन पदार्थों की वेदी पर चढ़ा रही है। नारी को यह हमेशा याद रखना चाहिये कि उसका अस्तित्व सौन्दर्य की अपेक्षा शील प्रधान है।

उसकी भलाई तो इसी में है कि वह कृत्रिम चकाचौंध से दिग्भ्रान्त न होकर अपनी मर्यादा को समझे एवं उस पथ पर बढ़ने का संकल्प करे, जिस पर चलकर हजारों नारियों ने अनुसरणीय पदचिह्न अंकित किये हैं।

लेखन की इन घड़ियों में मैं उन समस्त ग्रन्थों के प्रति नत-प्रणत हूँ, जिनसे मुझे लेखन-पाथेय प्राप्त हुआ।

पूज्य उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के प्रति सादर विनयावनत हूँ, जिनकी प्रेरणा से ही प्रस्तुत आलेखन संभव हो सका। निश्चित ही उनका सानिध्य चिंतन और मनन का पथ प्रशस्त करता है।

मेरे लगभग हर लेखन का संपादन जिनके द्वारा संपन्न हुआ है, उन प्रज्ञासम्पन्ना साध्वी डॉ. नीलांजना श्रीजी म. को साधुवाद क्या दूँ? इस लेखन के संपादन में उनका श्रम, समय और प्रज्ञा, तीनों का सुन्दर सहयोग मिला है। उनके उज्ज्वल चारित्रमय जीवन की शुभकामनाएँ करता हूँ।

प्रस्तुत प्रकाशन की अपनी महत्ता है और यह महत्ता तब तक बनी रहेगी, जब तक नारी का अस्तित्व विद्यमान रहेगा। अशील का कोहरा जब-जब शील की स्वर्णिम किरणों को आवृत्त करने का खोखला पुरूषार्थ करेगा, तब-तब नारी जीवन के अनूठे हस्ताक्षर नया आलोक एवं नयी दिशा देंगे।

अज्ञतावश जिनाज्ञा विरूद्ध लेखन के प्रति सादर क्षमाप्रार्थी हूँ।

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

कर्त्तव्य गीतिका

(तर्ज-कर चले हम फिदा..)

दीप श्रद्धा के दिल में जला लीजिये।
राहें रोशन जीवन की सदा कीजिये .... ।।टेर।।
फूल पुण्य का मुरझा न जाये कहीं।
शूल पापों की पाँवों में चुभे नहीं।।
एक मंत्र यही हो हमारा सदा,
मुस्कुराना हमें हो भले आपदा।।
पुष्प जैसे गुलाब खिला कीजिये
दीप श्रद्धा के दिल में जला लीजिये... ।।1।।
जन्मदाता के चरणों की कर वंदना,
ले के आशीष आकाश छू लेंगे हम।
करे सूरज की पहली किरण को नमन
हम बना लेंगे सार्थक ही सारे करम।।
भूल से भी कभी न गिला कीजिये
दीप श्रद्धा के दिल में जला लीजिये... ।।2।।

प्रभु आज्ञा में चलने का संकल्प हो
न्याय धन से ही संसार निर्वाह हो।
आचरण हो हमारा पवित्र सदा,
सत्य की साधना की ही इक चाह हो।
खूबियों का यहाँ सिलसिला दीजिये
दीप श्रद्धा के दिल में जला लीजिये... ।।3।।
चाहे अपमान हो, राहें मुश्किल बड़ी,
हारना होता क्या हमने जाना नहीं,
गम की घड़ियों में भी मणि मनित कभी
गुरु चरणों से बढ़कर ठिकाना नहीं।।
सज्जनों से सदा ही मिला कीजिये
दीप श्रद्धा के दिल में जला लीजिये... ।।4।।

- एक दुःखियारी, जिसने माता – पिता का बिछोह सहा, पशु की तरह हाट में बिकी और आज दासी का जीवन जी रही। उसमें एक मात्र आपका सम्बल था।

- करुणावतार ! आप इतने निष्करुण कैसे बन गये कि इस अभागिन के हाथों से आहार लेना रास नहीं आया। प्रभो ! आप भी झूठे निकले। कहते कहते चन्दना हलक फाड़कर रो पड़ी।

- माँ ! तुम निश्चिंत रहो। शील–सुरक्षा की बलि वेदी पर सांसों को होम दूंगी पर तेरी कीर्ति पर दाग नहीं लगने दूंगी।

नारी जगत
का
गौरव

महासती चन्दनबाला

महासती चन्दनबाला

मध्यरात्रि का घना अंधकार सर्वत्र छाया हुआ था। राजप्रासाद के शिखर पर टिमटिमाते दीप-प्रकाश से मात्र एक ही संदेश प्रसारित हो रहा था-सत्ता तमस् की नहीं, सदैव उजाले की है। अंधकार कितना ही घना क्यों न हो तथापि वह एक छोटे दीप के सामने लाचार है।

धारिणी और दधिवाहन : दोनों में परस्पर अद्‌भुत पूरकता

इस सन्देश में अध्यात्म स्वतः मुखरित था-भोगों की निशा को आखिर ढलना ही होता है। जो मानव-मन तृष्णा की अंधेरी गलियों में ही गोते लगाते हैं, उन्हें चैन और सुकून की उपलब्धि कभी नहीं होगी अतः भोग से योग की ओर चलो। वासना से उपासना की ओर बढो।

जब प्रभात 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की मंगलोक्ति दोहरा रहा था, तब भी

काकमुख अत्यन्त व्यथित और दु:खी था।

ब्रह्ममुहूर्त्त की सुखद शीतल हवा के झोंके मन के सारे ताप-सन्ताप को हरने के लिये उद्यत थे, तब भी काकमुख प्रतिशोध की ज्वाला में झुलस रहा था। यह शोध-विरोध की अग्नि दशक का समय पार कर दावानल का रूप धारण कर चुकी थी।

अचानक उसके नयनों में तैरने लगा वही पुराना घटनाक्रम !

कम्बलपुर की राजकुमारी धारिणी के स्वयंवर का प्रसंग था। सर्वकलाओं में निपुण धारिणी का ऐसा सौन्दर्य जैसे स्वर्ग से कोई अप्सरा धरा पर अवतरित हुई हो!

काकमुख का मन धारिणी के रूप में अटका पर भाग्य उसके साथ न था! स्वयंवर की परीक्षा में विजयी बने चम्पा के अधिपति दधिवाहन! दधिवाहन की इस महान् सफलता से काकमुख जल उठा! इतना ही नहीं....कम्बलपुर की इस घटना से पूर्व भी वह दधिवाहन के सम्मुख मात खा चुका था! जब वैशाली का वार्षिक महोत्सव था, तब भी वीरत्व प्रदर्शन की प्रतियोगिता में भी उसे करारी पराजय का सामना करना पड़ा था। रह-रहकर मान-मर्दन की दोनों घटनाएँ उसके मन को जख्मी कर रही थी।

अच्छा होता कि काकमुख स्वयं का प्रतिभा कौशल गुणानुगुणित कर अपना वैशिष्ट्य अंकित करता परन्तु वह केवल और केवल दधिवाहन से मानापमान का पुराना हिसाब बराबर करने की प्रतीक्षा में था।

सेनापति ! हम सुभद्र के पक्ष में चंपा से युद्ध करने का विचार रखते हैं, तुम्हारी क्या राय है?

राजन् ! इसमें राय की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तो पुण्य का कार्य है। यदि कोई अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन करके अन्य की जंगम अथवा स्थावर संपत्ति को हड़पना चाहे तो उसका विरोध अत्यन्त अनिवार्य है।

तुमने बिल्कुल ठीक कहा। मेरी भी यही सोच है कि जब कुरंगानरेश अपनी पुत्री भद्रलेखा हेतु अहिच्छत्रा के युवराज का चयन कर चुका है, तब भी भद्दिलपुर नरेश मदनक भद्रलेखा को जीवनसंगिनी बनाने का स्वप्न सजा रहा है और उस दुष्ट ने धमकी दी है कि यदि प्रसन्नता से यह सम्बन्ध नहीं बंधा तो मैं उसे जबरदस्ती उठाकर ले जाऊँगा और भद्रलेखा को किसी भी किंमत पर मैं अपनी बनाकर रहूँगा।

यदि राजा इच्छा और वासना के गुलाम बनेंगे तो प्रजा का संरक्षक कौन? उनका आदर्श कौन? दधिवाहन काल की विषमता देखकर द्रवित हो गये।

उसका ऐसा दुस्साहस कि वह युद्ध करके लेखा का अपहरण कर ले। मंत्रीश्वर तनिक कठोर होकर बोले। चंपा के रहते उसका यह मनोरथ कभी भी सफल नहीं हो सकता। उसने कुरंगा के बहाने चंपा को चुनौती दी है। हम भद्दिलपुर की ईंट से ईंट बजा देंगे।

सर्वसम्मति से प्रस्थान के शुभ मुहूर्त्त की उद्घोषणा हो गयी।

दधिवाहन का युद्ध हेतु प्रस्थान करना काकमुख के लिये जैसे मुँहमांगा वरदान था। वह पिछले लम्बे समय से किसी ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में था जब वह प्रतिशोध के स्वप्न को साकार कर सके और धारिणी को अपना बना सके। उसने चम्पा पर अचानक आक्रमण करने की मानसिकता के साथ-साथ योजना भी बना ली। पर उसका क्रियान्वयन तब तक सम्भव न था जब तक कौशाम्बी नरेश शतानीक की स्वीकृति प्राप्त न हो जाये। यह कार्य काकमुख के लिये सहज था। वह जानता था कि शतानीक स्वयं चम्पा को अपने राज्य में मिलाने के अवसर की खोज में है। यद्यपि इस आशय से एक बार वे समराँगन में चंपा के

सम्राट् दधिवाहन के द्वारा युद्ध का विचार-विमर्श

सामने हो चुके थे पर दधिवाहन के युद्ध कौशल्य ने उनके निरंकुश इरादों पर पानी फेर दिया।

एक बार फिर कौशाम्बीपति के सामने एक अवसर उपस्थित था। पर उनकी मानसिकता स्पष्टतः युद्ध के खिलाफ थी।

दधिवाहन और शतानीक सम्बन्धों की भूमिका पर सगे साढू थे इसलिये वे गलती का पुनरावर्तन करके सम्बन्धों में पड़ी दरार को और गहरा नहीं करना चाहते थे। पर काकमुख तो जैसे तैसे अपना उल्लू सीधा करना चाहता था।

उसने अपना प्रयत्न जारी रखा। उसने व्यक्तित्व के सम्मुख संबंधों को गौण बताते हुए अपमान के प्रतिशोध की अग्नि को इतनी हवा दी कि शतानीक काकमुख की बात से सहमत हुए बिना न रहे।

जब दधिवाहन प्रचण्ड स्तर पर मदनक के विरुद्ध तैयारियाँ कर रहा था, तब काकमुख चम्पा का चप्पा-चप्पा विनष्ट कर धारिणी को अपनी बनाने की उत्सुकता में था।

कुरंगा नरेश दधिवाहन के शौर्य एवं पराक्रम से भलीभाँति परिचित था। मदनक और दधिवाहन रणस्थल में उन्मत्त गजराज की भाँति गरज उठे। यद्यपि मदनक की सेना विशाल और प्रशिक्षित थी पर दधिवाहन के सामने ठहर न सकी। मदनक जीवित ही बन्दी बना लिया गया।

दधिवाहन की जय-विजय से अम्बर गूंज उठा। उसके साहस और सद्भाव की बिरुदावलियाँ और पराक्रम की अठखेलियाँ इतिहास का बेजोड़ पन्ना बन रही थी, तब चम्पा के कोने-कोने में त्राहिमाम् त्राहिमाम् का करुणाजनक दृश्य छाया हुआ था।

चम्पा की सेना किसी भी दृष्टि से कम नहीं थी पर विशाल सेना की कमी और अप्रत्याशित युद्ध की स्थिति ने उन्हें परेशानी में डाल दिया। नगर का कोना-कोना शस्त्रों की टंकार से गूंज उठा। खून की नदियाँ बह चली और देखते देखते चम्पा के सैनिक वीरगति को प्राप्त होते गये। कमजोर और कायर सैनिक रणभूमि से पलायन कर गये।

चंपा पर अप्रत्याशित आक्रमण

महाविजय के इन क्षणों से सर्वाधिक प्रसन्न काकमुख था। अहंकार की हुंकार ने उसे उन्माद से भर दिया। वह विजयोत्सव को जीवन की सबसे बड़ी सफलता मान गर्व से फुला न समाया। गर्वोन्नत भाल पर चमक रहे दर्प के नशे से भरकर उसने आज्ञा प्रसारित की-मेरे प्रिय साथीगणों! इस चम्पा पर अब हमारा अधिकार है। यह मौका है अपमान के प्रतिशोध का! लूट लो इसे। हाहाकार मचा दो यहाँ।

इस नगरी के सारे रास्ते तुम्हारे लिये खुले हैं। जिसे रूप चाहिये, वह रूप पर अधिकार जमा लें। जिसे रुपैया चाहिये, वह धन के भण्डार भर लें। यह नगरी तुम्हारी है। तुम्हें पूरी छूट है। तुम चाहे वह करो। सुनकर सेना की उत्तेजना और आक्रामकता सीमा पार कर गयी। उनके अन्तर में दबी राक्षसी-वृत्तियाँ खुलकर नृत्य करने लगी। घर-घर में, गली-गली में आतंक और क्रूरता का ताण्डव नृत्य होने लगा। लूटपाट, हत्या, दुराचार और तोड़-फोड़ से चम्पा का जर्रा-जर्रा कांप उठा।

काकमुख का सारा मन महारानी धारिणी की ओर केन्द्रित था। आज उसे चिर-कल्पित भावना साकार होती दिखाई दे रही थी। वह सीधा राजभवन की ओर चल पड़ा और इधर नगर की शोचनीय स्थिति को देखकर धारिणी दु:खी थी। उसे चन्दना के जीवन का भय तो था ही, साथ ही साथ स्वयं के शील की सुरक्षा का भी प्रश्नचिह्न उसके सामने था।

घटनाक्रम इतनी तेजी से बदला कि वह संभल पाये, उससे पहले ही काकमुख राजभवन की ओर आता दिखाई दिया। वह जानती थी कि काकमुख कामी, कपटी और लम्पट है। उससे मुझे ही नहीं, चंदना को भी खतरा है।

चन्दनबाला स्थिति की विकटता से अनभिज्ञ नहीं थी पर उसका बाल मन भला उस भयावहता का आकलन कैसे कर पाता, जिसका सामना धारिणी कर रही थी।

काकमुख सीधा अन्त:पुर में पहुँचा पर धारिणी को कहीं भी न पाकर वह उद्विग्न हुए बगैर नहीं रहा।

अरे ! कहीं हाथ में आयी बाजी को मैं चूक तो नहीं गया। वह धारिणी की तीक्ष्ण प्रज्ञा को सूक्ष्मतया जानता था। हो सकता है-वह अज्ञात स्थल की ओर पलायन कर गयी हो, तब तो उसे खोज पाना भी संभव नहीं होगा।

आवेश से भरकर उसने आदेश दिया-सैनिकों! पूरे राजभवन को घेर लो और धारिणी को खोज निकालो, चाहे वह भूगर्भ में क्यों न समा गयी हो।

सैनिक दौड़े राजभवन की ओर। पर स्थिति वहाँ कुछ ओर ही थी। राजमहल के वफादार सैनिक उन काकमुख के चमचों पर टूट पड़े। उनकी वीरता, साहस और रगों में दौड़ रही स्वामीभक्ति साकार हो उठी। पलभर के लिये तो काकमुख भी अचरज में पड़ा। वह जानता था कि यदि आज धारिणी को अपनी नहीं बना पाया तो फिर कभी नहीं बना सकेगा।

वह गरज उठा-सैनिकों ! टूट पड़ो। कोई भी सैनिक बचना नहीं चाहिये।

तलवारें चमक उठी और युद्ध अन्तिम निर्णय की ओर बढ़ने लगा। चम्पा के सिपाही सामान्य नहीं थे, उनकी आँखों में वफादारी बोल रही थी पर काकमुख की विशाल सेना का सामना करना इतना सरल न था। धारिणी ने भविष्य की विकटता को देखकर तलवार हाथ में ले ली।

चन्दना बोली-माँ ! तेरे हाथ में तलवार!

हाँ बेटी-यह तो क्षत्रियाणी की आन-बान और शान है। शील की अखण्डता के लिये तलवार उठानी पड़े तो क्या, यदि जीवन न्यौछावर करना पड़े तो भी हँसते-हँसते कर देना चाहिए।

तब तो माँ ! मुझे भी तलवार दो ! मैं भी लड़ूंगी।

नहीं बेटी ! अभी तेरी उम्र ही क्या है? फूलों में पली-बढ़ी तूं तलवार नहीं सम्भाल पायेगी मेरी जान।

माँ ! क्या तुझे अपने खून पर भी विश्वास नहीं है? मेरी रगों में भी तेरा ही खून दौड़ रहा है। मैं भी करूंगी सामना। चन्दना पुनः पुनः जिद्द करने लगी। उसकी जिद्द में भी शौर्य और गांभीर्य का ओज था।

चन्दना के निष्कंप धैर्य को देखकर धारिणी का हृदय गौरव से भर आया। उसने चन्दना का माथा चूमते हुए कहा-बेटी! मैं तेरे वीरत्व से अभिभूत हूँ। समय आने पर प्राणों की तिलांजलि दे देना पर अपने सतीत्व पर आँच हरगिज मत आने देना।

माते! मुझे प्राणोत्सर्ग स्वीकार्य है पर शीलोत्सर्ग नहीं। तुम मेरी ओर से सर्वथा निश्‍चिंत रहो।

इतने में उनके कानों में आवाज टकरायी-धारिणी! दरवाजा खोल।

- ओह ! तो वह नराधम यहाँ तक आ पहुँचा!

- धारिणी ! तूं सुन रही है न?

माँ! अब क्या होगा? चन्दना की आत्मा कांप उठी।

धारिणी की आँखों में भय था। वह आशंकित निगाहों से बोली-वही होगा, जो किस्मत को मंजूर है। पर इससे घबराने की क्या जरूरत? कोई भी न हुआ तो क्या हुआ। धर्म का तो सहारा है, वही हमारी रक्षा करेगा।

सैनिक दरवाजे को पुनः पुनः खटखटा रहे थे। वह द्वार भी कोई सामान्य न था। जब-जब इस प्रकार चिन्ता के बादल गरजते, तब-तब यह द्वार रक्षक बन जाता और जैसे सीना तानकर शत्रु के सामने खड़ा हो जाता।

धारिणी! तूं कुछ भी कर ले। बच तो नहीं पायेगी। अभी तक तूंने मेरी बाजुओं का बल देखा कहाँ है?

ओ वासना के कीड़े! चंपानाथ से दो-दो बार करारी पराजय झेलने पर भी तेरा मोह छूटा नहीं। और रहा तेरा पराक्रम... वह तो मैं देख ही रही हूँ। गीदड़ की होशियारी को भला कौन नहीं जानता! जो पीठ के पीछे इस प्रकार वार

करता है, वह नामर्द है नामर्द। यदि तेरी बाजुओं में बल होता तो सिंह पराक्रमी महाराजा दधिवाहन से भिड़ लेता। थूं थूं है तेरी कायरता पर। धारिणी ने बुलंद स्वरों में ललकारते हुए कहा। एक बार तो काकमुख भी आश्चर्यचकित रह गया।

अरे ए चंपा की रानी! यदि तूं सिंहनी है तो खोल दरवाजा और सामने आ।

'सिंहनी' शब्द सुना और धारिणी चौंकी। मेरी अस्मिता पर प्रश्न चिह्न। एक सिंहनी मरना पसंद कर लेती है पर अपने गौरव के साथ खिलवाड़ नहीं कर सकती।

वह द्वार-उद्घाटन के लिये आगे बढ़ी तो चन्दना ने कहा-माँ! माँ! क्यों अपने हाथों से स्वयं को संकट में डाल रही हो।

पुत्री! जब चंपा की साम्राज्ञी के अस्तित्व और गौरव को कोई चुनौती दे तब इस तरह छिपकर स्वयं को बचाने से कुर्बान हो जाना कहीं ज्यादा अच्छा है।

धारिणी ने अदम्य साहस से भरकर सांकल खोल दी और भूखी शेरनी की भाँति सुभटों पर टूट पड़ी। कुछ पलों में तो जैसे परिस्थिति पलटती नजर आयी।

चन्दना एक तरफ शांत खड़ी थी। पर हृदय में हाहाकार मचा हुआ था। वह साक्षात् देख रही थी कि करुणा और कोमलता की प्रतिमूर्ति समय आने पर किस प्रकार अम्बिका और चण्डिका का रूप धारण कर लेती है।

सतीत्व की रक्षा के लिये प्राणों का उत्सर्ग! वास्तव में जीवन का मोह छोड़ना अति दुष्कर है पर उनके लिये, जो भोग-वासना के कीड़े बनकर जीते हैं और मरते हैं।

जिन्होंने शील को सांसों की तुलना में अधिक महत्त्व दिया है, वे मरकर भी फिजाओं में सदा-सदा के लिये अमर हो जाते हैं। चन्दना धारिणी के सौन्दर्य पर सदा से फिदा थी पर उसका शौर्य आज उससे कई गुणा सुन्दर और मधुर प्रतीत हो रहा था। धारिणी जैसी माँ को पाकर उसका मन गौरव से नाच उठा।

चंपा की सिंहनी का पराक्रम देखकर काकमुख ठगा सा रह गया। किसने कहा कि नारी अबला है, वह सबला और सृष्टि की महाशक्ति है। वह कमनीयता और कोमलता की प्रतिमा है, तो वह दुर्गा और भवानी से भी कोई कम नहीं है।

कुछ पलों में ही देखते-देखते पचासों सैनिक धारिणी के सामने आये और मौत के घाट उतर गये।

इधर काकमुख का सैनिकों को स्पष्ट निर्देश था कि धारिणी को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुँचे। अत: आमने-सामने होना भी कठिन था पर दूसरी ओर वह अम्बा सा उग्र रूप धारण कर रही थी। इससे काकमुख की सांप-छुछूंदर सी स्थिति बन गयी थी। न निगलते बने, न उगलते।

उसने सैनिकों को संकेतपूर्ण आदेश दिया कि वे धारिणी को पीछे से धक्का दे।

धारिणी का सारा ध्यान सामने की ओर केन्द्रित था। दो सैनिकों ने जैसे ही धक्का दिया, तलवार उसके हाथ से छिटक कर दूर जा पड़ी, औंधे मुँह धारिणी जमीं पर गिरी और गिरते ही मूर्च्छित हो गयी।

चन्दना तुरन्त धारिणी के समीप पहुँची और माँ! माँ! कहती हुई अश्रुपात करने लगी।

माँ! माँ! कुछ बोलती क्यों नहीं? क्या हो गया है तुम्हें! माँ की मूर्च्छित अवस्था का दु:ख और काकमुख के निंद्य प्रयास का भय, दोनों आक्रोश में बदल गये।

नराधम ! नरपिशाच ! लगता है तुम्हें अपनी जात-पात और पद का भी बोध नहीं रहा। अपने यशस्वी पूर्वजों की कुलीन परम्परा को कलंकित करते हुए जरा भी शर्म नहीं बची तुम में । तेरे दुष्कर्म को देखकर शर्म भी शर्म से पानी-पानी हो गयी है। चन्दना के मुख से क्रोध के अंगारे बरस पड़े ।

अरे ए छोकरी! चार फुट की होकर जबान लड़ाती है। सैनिकों! तुरन्त इन्हें रथ में डाल दो। धारिणी और चन्दना का अपहरण कर काकमुख कौशाम्बी की ओर चल पड़ा।

चिन्तित चन्दना माँ को सचेत करने के लिए बिना थके-हारे प्रयत्न कर रही थी। इधर काकमुख को यह संदेश भी मिल चुका था कि दधिवाहन चम्पा की ओर प्रस्थान कर चुके हैं। इसलिये उसने राजमार्ग को छोड़कर जंगल के मार्ग पर रथ को गति दी।

जंगल का रास्ता सुखद समीर के झोंकों से भरा था पर सहज न था। चाहकर भी सारथी रथ को तीव्र गति नहीं दे पा रहा था। ठण्डी पवन का मधुर संस्पर्श पाकर धारिणी होश में आ गयी। अपने आपको रथ में काकमुख के साथ पाकर वह विस्मय मिश्रित भय से भर गयी। उसने काकमुख की ओर देखा तो पाया, उसके होंठों पर जहरीली मुस्कान छायी हुई थी। घबराती हुई उसने चन्दना को देखा-वह बिल्कुल प्रशांत थी।

पेड़ों की झुरमुट से होकर रथ शान्त भाव से गन्तव्य की ओर भागा जा रहा था कि गति अवरोधक उपस्थित हुआ। भूमि के पथरीले भाग पर रथ का दौड़ना तो दूर, चलना ही दुष्कर था। काकमुख रथ से नीचे उतरा और स्पष्ट आदेश दिया-धारिणी! नीचे उतरो।

धारिणी ने कहा-कहीं नहीं जाना हमें। हम इसी स्थिति में ठीक है। काकमुख ने पुनः अपना आदेश दुहराया। धारिणी ने प्रतिवाद करना उचित न समझा और कुछ सोचती हुई चन्दना के साथ नीचे उतर गयी।

अब काकमुख की सारी सोच केवल और केवल वासना-तृप्ति की ओर दौड़ रही थी। इसके लिए एकान्त सर्वथा काम्य था पर जंगल में किसी समुचित स्थान को पाना इतना सहज कहाँ था!

यकायक उसे निकट ही एक कुटिया नजर आयी। एकान्त देखकर काकमुख का मन नाच उठा। बरसों पुरानी कामना-पूर्ति की कल्पना से ही उसके रोम-रोम में रोमांच छा गया।

उसने धारिणी और चन्दना को अन्दर जाने का आदेश दिया। धारिणी का सशंकित मन अनिष्ट भावनाओं से भयभीत हो उठा।

कहीं यह नृशंस मेरे शील के साथ खिलवाड़ करने का प्रयत्न करेगा तो? पर अब कोई चारा भी तो नहीं है। बस ! धर्म की ही एक शरण शेष है। नवकार का ही एक सहारा है। वही मेरा सुरक्षा-कवच है, इस कष्टापन्न क्षणों में। यदि शील की वेदी पर स्वयं को कुर्बान करना पड़ा तो भी हँसते हँसते कर जाऊँगी। यही मुझे परम प्रिय और मेरा परम इष्ट है। धारिणी ने इसी दृढ़ संकल्प के साथ अपना पाँव कुटिया के भीतर रखा। चन्दना धारिणी के साथ ही थी। काकमुख भी पीछे-पीछे ही था।

कुटिया क्या थी, जैसे अंधेरों का समूह। वैसे भी भास्कर स्वर्णिम किरणों का जाल समेट कर अस्ताचल की ओर लौटने की तैयारी में था। सांझ ढल चुकी थी। नितान्त एकान्त, गुलाबों की मोहक खुश्बू और ठण्डी पवन के मस्त झौंके। काकमुख का मन मधुर कल्पनाओं में उड़ा जा रहा था पर भय भी कोई कम न था। वह जानता था कि महारानी और राजकुमारी को राजभवन में न पाकर दधिवाहन की सारी आशंकाएँ मेरे इर्दगिर्द ही होगी। धारिणी उसके सामने थी, सारी अनुकूलताओं में सबसे पहले रूठी धारिणी को राजी कैसे करना और कैसे राह का रोड़ा चन्दना को हटाना, काकमुख के सम्मुख ये दो महाप्रश्न खड़े थे।

इतने में उसे किसी की पदचाप सुनाई दी और वह आशंकित होता हुआ बाहर निकला। आवाज तो स्पष्ट सुनायी दे रही थी पर कोई भी नजर नहीं आ रहा था।

एक तो गहराता अंधकार, दूसरी सघन वृक्षों की झुरमुट। एक बार तो मन कांप उठा-कहीं दधिवाहन के सैनिक हुए तो? पर वह सर्वथा निरूपाय था। कुछ कदम आगे जाकर वस्तुस्थिति को जान लेना ही बेहतर है। असि कोष में से तलवार निकालकर वह एकाकी ही आगे बढ़ने लगा।

माँ ! चन्दना ने पुकारा ।

धारिणी कुछ भी बोली नहीं। केवल 'हूँ' कहकर जैसे स्वयं की उपस्थिति का संकेत प्रस्तुत किया।

क्या सोच रही हो? चन्दना ने कहा।

यही बस! कर्म की गति कितनी विचित्र है। कल तक दासियों से सम्मानित महारानी आज सर्वथा एकाकी है। कल तक मखमली शय्या पर शयन करने वाली राजकुमारी कष्टों के कांटों से छिल रही है।

जानती हो चन्दना! चन्दना ने माँ की ओर देखा।

इन कष्टों का दु:ख जितना जख्मी नहीं कर रहा, उससे कहीं ज्यादा शील की सुरक्षा का प्रश्न! शील ही अमर धन है। महाशक्ति का महासागर है वह । उसके सम्मुख राजसुख-राज वैभव-राज सम्मान, ये सब तुच्छ और हीन हैं। यहाँ तक कि स्वर्ग का ऐश्वर्य और सौन्दर्य भी कुछ नहीं है। यह तो कल्पतरू, कामघट और कामगवी से हजारों-लाखों-करोड़ों गुणा आनंद, शान्ति और सुयश प्रदायक है। शील के अखण्ड गौरव के लिये यदि प्राणों का उत्सर्ग करना पड़े तो भी फायदे का ही सौदा है। शील का मार्ग मरकर भी अमर होने का मार्ग है।

चन्दना! मुझे मेरी चिन्ता कम, तेरी अधिक है। यदि वह नराधम तेरे साथ कुछ....

चन्दना बीच में बोली-माँ! तुम निश्चिंत रहो। शील-सुरक्षा की बलि वेदी पर सांसों को होम दूंगी पर तेरी और पिताजी की कीर्ति पर दाग नहीं लगने दूंगी।

धारिणी और चन्दना के बीच चल रहा वार्तालाप काकमुख के कदमों की आहट पाकर रूक गया।

काकमुख का मन गुदगुदाने लगा। बिना कोई भूमिका बनाये अपनी मन की बात कह डाली-धारिणी ! अब तूं मेरी है। अच्छा यही होगा कि बेरोकटोक मेरी बात मान जा।

नराधम! कभी भी सम्भव नहीं होगा। तेरी कल्पना सपने में भी साकार नहीं हो सकती। धारिणी ने स्पष्ट प्रत्युत्तर दिया।

देख! मेरी सारी सत्ता-सम्पत्ति पर अधिकार तेरा होगा। तूं मेरी रानी बनकर राज करेगी राज!

लानत है तुझ पर। दास होकर भी रानी का ख्वाब देखता है। तेरी अधमता का कोई पार भी है कि नहीं? धारिणी का तीक्ष्ण व्यंग्य सुनकर काकमुख का चेहरा तमतमा उठा।

देख धारिणी! यदि मेरी बात नहीं मानी तो टेढ़ी अंगुली से भी घी निकालना आता है। यह तो मेरी नैतिकता है कि तेरे साथ मैंने कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की।

वाह ! परनारी का अपहरण करता है और अपने आपको नैतिक बताता है। तूं चाहे वह कर ले, मुझे जीते जी हाथ भी नहीं लगा सकेगा।

लगता है काम के राग में अंधी बनी तेरी बुद्धि का दिवाला निकल गया है अन्यथा राजरानी और राजकन्या को इस तरह उठा लाने की हिम्मत तुझमें कभी नहीं होती।

धारिणी! जरा विवेक से काम लो। जिसे तुम काम-राग कह रही हो, वह तो मेरे प्रेम की पराकाष्ठा है पर लगता है तेरे दिमाग को जिद्द की दीमक चट कर गयी है अन्यथा यशस्वी और सुखी भविष्य को तुम ठोकर नहीं मारती।

वासना के गटर के कीड़े होकर भी यशस्वी होने का अभिमान! काकमुख! लगता है तेरी बुद्धि सठिया गयी है । एक तरफ चोर की तरह चंपा में सेंध लगाते हो, दूसरी ओर परस्त्री को उठाकर लाते हो, फिर भी सत्ता और बाहुबल का दम्भ भरते हो। प्रचण्ड शक्ति के स्वामी दधिवाहन से टकराकर तूंने अपने विनाश को बुलावा भेजा है। मुझे तो लगता है, तेरा अन्त अत्यन्त निकट है। जब गीदड़ की मौत आती है, तब वह शहर की तरफ भागता है।

यदि तुझे अपनी जिन्दगी का मोह है तो अभी भी वक्त है। दधिवाहन के शिकारी पंजे तेरी गर्दन तक पहुँचे, उससे पहले ही भाग जा।

हा ! हा ! हा ! मेरा पराक्रम देखकर भी दधिवाहन का पक्ष लेती हो।

वाह रे कायर वाह! पहले अपनी नाक कटवायी और इस बार विश्वासघाती बने, फिर भी पराक्रम की झूठी

अकड़! इस सती-सावित्री का यह शाप है कि तेरा अहं धूमिल होकर रहेगा। धारिणी एक श्वास में ही बोल गयी। उसका रक्ताभ मुखमण्डल देखकर काकमुख चोंक उठा परन्तु तुरन्त संभल कर बोला-धारिणी! अब यह वियोग मेरे लिये असह्य है। अब अपना रूप-सौन्दर्य समर्पित कर दो... मेरी हो जाओ। अन्यथा...इसका बहुत बुरा फल भोगना होगा।

लम्पट! दुराचार स्वयं करते हो और कहते हो कि मुझे बुरा फल भोगना होगा। मैं तेरे अंधेरों और दुःखों से भरे भावी को जान रही हूँ। भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं।

धारिणीऽऽऽ! काकमुख झल्ला उठा।

मूर्ख ! कान खोलकर सुन ले। मेरे प्राण लेकर भी तूं मुझे पा न सकेगा। और शील के लिये मर-मिटना स्त्री के गौरव का अमर प्रतीक है। उसके शील की खुश्बू से धरती महक उठती है। उसका उत्सर्ग उज्ज्वलता का महान् सन्देश बन कर भावी पीढ़ी को सदैव प्रेरणा देता रहता है।

पर तूं अपनी सोच! दुराचारी की छाया भी जिस चीज पर पड़ती है, वह हर चीज अपवित्र हो जाती है। उस पापी के मरने के बाद तो क्या, जीते-जी भी कोई उसका मुख देखना या नाम लेना पसन्द नहीं करता है। उसे सामने आते देखकर मनुष्य तो क्या, कुत्ते भी राह बदल लेते हैं। धारिणी ने अच्छी तरह लतेडते हुए कहा।

अब ये अपनी बकवास बन्द कर। आक्रोश से भरकर काकमुख आगे बढ़ा। धारिणी पहले से ही सावधान थी, वह त्वरया पीछे हट गयी। वह जान चुकी थी कि इस कामी और लम्पट का क्या भरोसा। कुछ भी कर सकता है। ज्योंहि काकमुख ने धारिणी को छूने का प्रयास किया, उससे पहले धारिणी ने अपने आराध्य का पावन स्मरण करके जीभ बाहर खींच ली।

क्षणार्ध में धारिणी के प्राण-पखेरू उड़ गये। उसके जमीन पर लुढ़कते ही चन्दना निकट जा लिपट कर रोने

लगी–माँ! माँ!

धारिणी का महा–उत्सर्ग देखकर काकमुख का मुख खुला का खुला रह गया। पश्चात्ताप से उसका हृदय भर आया–ओह! यह आत्मा कितनी पावन! उसका धैर्य और संकल्प बल कितना अनुत्तर। और मैं कितना अधम! नीच! पापी!

वासना की जिस धधकती ज्वाला को वह युद्ध में हजारों का रक्त बहाकर भी न बुझा सका था, वह आग शील के शीतल जल से पल भर में शान्त हो चुकी थी।

मैंने भोगैषणा की तृप्ति के लिए अकार्य किया और वह शील की सुरक्षा के लिये मर मिटी।

वह मरकर भी जी गयी और मैं जीते–जी मर गया।

कैसे होगा मेरे पापों का प्रक्षालन! शर्म से उसकी आँखें झुक गयी। चौधार अश्रुधार बहने लगी।

कंचन सी काया अब मिट्टी के ढेले के अतिरिक्त कुछ भी न थी। वह फटी आँखों से धारिणी की पावनी काया को देख रहा था। जैसे वह काया कह रही थी–काकमुख! धारिणी का आत्मोत्सर्ग विश्व का वह स्वर्णिम पन्ना बन चुका है, जिसकी अक्षर–देह के समक्ष महापुरुष तक झुका करेंगे। जिसकी शब्दातीत गौरव गाथाएँ अर्हत् भी गायेंगे। काया का रागी बनकर तूंने अपनी परम्परा पर कालिख पोत दी और धारिणी कायोत्सर्ग कर शील की दिव्य आभा से चमक उठी। पिता और पति, दोनों कुल इस महानारी से अनुपम गौरव पा गए।

चन्दना की आँखें कगार टूटी महानदियों की भाँति बह रही थी। पर कौन सान्त्वना दे....कौन धीरज बंधाये।

काकमुख अत्यन्त शर्मिन्दा था। वह ढ़ाढस बंधाने जाये तो भी किस मुँह से।

बिल्कुल एकाकी, निरीह पाकर चन्दना का मन कांप उठा। इस दुष्ट ने यदि मेरे साथ दुर्व्यवहार किया तो?

तो क्या? इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। माँ का आदर्श-दीप इन निबिड अंधेरों में मेरा सच्चा पथ-दर्शक है। वह ज्योंहि आत्मोत्सर्ग की तैयारी करने लगी, काकमुख ने उसका हाथ पकड़ लिया।

चन्दना के दु:ख का लावा क्रोध बनकर फूट पड़ा-विषयान्ध! मुझे हाथ लगाने की कोई जरूरत नहीं। मेरी माँ के हत्यारे! तूंने मेरा सर्वस्व छीन लिया। तेरे पाप का फल तुझे अवश्य मिलेगा।

नहीं.....नहीं.....! ऐसा मत कहो । काकमुख दीनतापूर्वक बोल उठा।

तूंने शीलवंती नारी की एक गौरवपूर्ण मृत्यु को देखा है, अभी राजकन्या का देहोत्सर्ग अवशिष्ट है । कहती हुई चन्दना हाथ मुँह की ओर ले जाने लगी। काकमुख ने अविलम्ब उसे रोक लिया।

चन्दना ! ऐसा न करो। इस तरह निष्ठुर न बनो। उसकी आँखों से पश्चात्ताप की धारा बह रही थी-पहले ही मैं एक सती की हत्या का पाप अपने माथे मढ चुका हूँ, तुम दूसरी हत्या से मुझे नरकगामी न बनाओ।

चन्दना ! मैं जानता हूँ कि मेरा अपराध अक्षम्य है पर तुम तो करुणा की देवी हो। इस पापी को पाप से उबार लो पुत्री!

पश्चात्ताप के आँसुओं को देखकर चन्दना थोड़ी आश्वस्त हुई।

चन्दना! मेरी कुलदीपिका बनकर मेरा गृहाँगन अपनी सुरभि से महका दो, यही मुझे काम्य है, यही मेरे पाप का पहला प्रायश्चित्त है। वह पुन: पुन: अपना प्रस्ताव दोहराने लगा।

काकमुख के स्नेहिल प्रस्ताव को चन्दना ठुकरा न सकी। उसकी अधिकांश रात्रि माँ की अकल्पित जुदाई में रोते-रोते व्यतीत हुई और काकमुख की अपराध-बोध में। सूर्य फिर सुनहरी संभावनाओं के साथ उदित हुआ। रथ सूर्य तपने से पहले कौशाम्बी की सीमाओं में प्रविष्ट हो चुका था। पूरे रास्ते काकमुख और चन्दना मौन थे।

चन्दना माँ की मधुर स्मृतियों में खोयी उदास भाव से अज्ञात भावी के चिन्तन में थी और काकमुख पाप के बोझ

से अभी भी उद्विग्न व उदास था।

जैसे ही रथ भवन के सम्मुख उपस्थित हुआ कि द्वारपाल ने भुवन-स्वामिनी से सेनापति के आगमन की सूचना दी। सेनापति की पत्नी अत्यन्त आनंद में आ गयी। कौशाम्बी के वीर सेनापति चम्पा पर विजय ध्वज लहरा कर आ रहे हैं। बधाई के साथ मन में विविध सामग्री की कल्पना संजोये वह दौड़ी-दौड़ी प्रस्तुत हुई। पर जैसे पहली ही नजर में उसकी आशाओं पर तुषारापात हुआ। काकमुख के साथ चन्दना को देखकर उसके आक्रोश और नाराजगी की सीमा न रही।

पत्नी का रूठना और क्रुद्ध होना काकमुख से छिपा न रहा। पत्नी ने भीतर आने तक का नहीं कहा पर उसने उपेक्षा की कोई परवाह नहीं की। भार्या का कड़ा रूख....मन ही मन तिलमिलाना....किसी प्रकार का हालचाल न पूछना स्पष्ट रूप से चन्दना की नापसंदगी को जाहिर कर रहे थे।

काकमुख बोला-देवी! अप्रसन्न हो? वर्षों से हमारा भवन नि:संतानता के अभिशाप से ग्रस्त था। शाप का वह पाप अब धुल चुका है। ये धर्म-पुत्री हमारे जीवन में खुशियाँ भरेगी, भविष्य को संवारेगी, कुल दीपिका बनकर हमारा नाम रोशन करेगी। दुनिया का सर्वाधिक महंगा यह उपहार मैंने तुम्हारे लिये चुना है।

काकमुख की पत्नी गुस्से में बोली-सब समझती हूँ तुम्हारी चालाकी को। मैंने भी कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेली है।

देवी ! तुम जैसा समझ रही हो, वैसा कुछ भी नहीं है। काकमुख ने स्पष्टीकरण किया।

तुम कुछ भी कहो पर जीते-जी मैं तुम्हारा यह सपना कभी भी सच नहीं होने दूंगी। तुम चाहते तो स्वर्ण-रजत की मंजूषाएँ ला सकते थे पर मेरी छाती पर मूंग दलने के लिये सौत को उठा लाये।

काकमुख ने राजी करने के हजार प्रयत्न किये पर भार्या के मन का दुराग्रह और आक्रोश क्रमशः बढ़ता जा रहा

था। वह धमकी भी दे चुकी। किसी भी कींमत पर यह छोकरी इस घर में नहीं रह सकती। यदि तुम अपनी चाल से बाज न आये तो मैं तुम दोनों की इज्जत की धज्जियाँ उड़ा दूंगी।

कौशाम्बी के सेनापति के मान की अवगणना । लोगों में तिरस्कार, निंदा और थूं...थूं...। काकमुख के पूरे शरीर में जैसे सिरहन-सी दौड़ गयी।

मुझे धन के सिवाय कुछ नहीं चाहिये। इस छोकरी को नीलाम करके तुम जो कुछ पा सकते हो, ले आओ, वरना..!

नहीं....! रक्षक ही राक्षस बन जाये तो इस दुनिया में सम्बन्धों के महल किस विश्वास की नींव पर टिकेंगे।

सेनानायक बुरा फँसा। एक तरफ खाई, दूसरी ओर कुआँ । धारिणी को पाने चला और एक सती की हत्या का कलंक लगा बैठा। प्रायश्चित्त करने चला और नीलामी का अभिशाप सामने खड़ा हो गया।

चन्दना भाग्य की विचित्र खेलाखेली से अशान्त नहीं पर विस्मित जरूर थी। उसने हर प्रतिकूलता को सहजता से जीने का मानस बना लिया था। हर घटना कर्म से प्रेरित है और कर्म-जगत् में कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व में सर्वदा-सर्वथा एक्य और साम्य होता है। 'जीव कर्म का कर्त्ता है। कर्त्ता ही भोक्ता है। भोगे बिना मुक्ति नहीं है।' ये स्वर्णिम-सूत्र उसे संस्कारों की घुट्टी में जन्म से ही प्राप्त हुए थे।

परिस्थितियों पर गहन चिन्तन से विमर्श कर वह निर्णायक मोड़ पर खड़ी थी। उसने संकल्प कर लिया-मेरी उपस्थिति मात्र से कलह पनपे, वहाँ मुझे नहीं रहना है। काकमुख से चन्दना ने कहा-तात्! मैं देख रही हूँ कि मेरे कारण आपका गृहस्थ जीवन दुरूह बन गया है। आपके सम्बन्धों में आ रही दरार ओर गहरी हो, उससे पहले मुझे आप मेरी किस्मत पर छोड़ दीजिये।

भर्राए कण्ठ से काकमुख बोला-पर बेटी! जिन्दगी की डगर बड़ी कठिन है।

चन्दना ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा-मैं स्वयं लड़ लूंगी दुर्भाग्य के अंधेरों से। यही मेरे पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित्त है।

पर छोड़ूं तो भी कहाँ? किसके भरोसे?

भगवान के भरोसे! दासी-विक्रय विपणि में। मैं किसी भी तरह अपना गुजारा कर लूंगी। काकमुख से कुछ कहते नहीं बना। बस! आँखें झर-झर बहती रही।

दास-दासी विक्रय बाजार....मध्य में बड़ा चौक और चौक पर खड़ी चन्दनबाला! धर्मपिता के द्वारा धर्मपुत्री की नीलामी पर किस्मत के आगे वह लाचार जो था।

विक्रय की बोली चल रही थी। चन्दना प्रशांत थी। उसके मुख पर ज्ञाता-दृष्टा भाव का बोध-प्रकाश छितरा हुआ था।

एक सम्भ्रान्त...कुलीन और सुशील राज कन्या का इस प्रकार नीलाम होना, पशु की भाँति बिकना किसी आश्चर्य से कम न था।

सौन्दर्य रस प्रेमी अनेक भ्रमर चन्दना पर मंडराने लगे । वहाँ श्रीमंतों की जैसे भीड़ जमा हो गयी। तेंजी से बढी बोली दस हजार की स्वर्ण मुद्रा से दस लाख तक पहुँच कर रुक गयी। एक तरह से निर्णायक क्षण आ पहुँचा। इतने में नगरवधू की नजर चन्दना पर पड़ी-अरे! यह सौन्दर्य का सितारा अब तक छिपा कैसे रहा। गुलाबी होंठ! छरहरी काया! काली गहरी आँखें। अंग-अंग से जैसे सौन्दर्य का माधुर्य टपक रहा है। इस कामधेनु को शीघ्र ही हस्तगत कर लेना चाहिये।

उसने तुरन्त ग्यारह लाख की बोली लगायी। बढ़ती बढ़ती बोली बीस लाख तक पहुँच गयी पर उस नगरवधू के पक्ष में ही रही। नगरवधू ने हाथोंहाथ बीस लाख स्वर्ण मुद्राएँ भवन से मंगवाकर काकमुख के हाथों में थमा दी। एक

स्त्री के द्वारा लगायी गयी इतनी बड़ी बोली देखकर चन्दना कुशंका से भर गयी। उसने तुरन्त परिचयात्मक प्रश्न किया-देवी! आपके घर मुझे क्या काम करना होगा?

नगरवधू बोली- और कुछ नहीं, बस! सज-संवर कर रहना और सौन्दर्य प्रेमियों को खुश रखना। उनके मन को बहलाना। अकृत्य सुनकर चन्दना का कलेजा कांप उठा। वह बोली-माते! मैं तो ब्रह्मचर्यधारिणी बाला हूँ। यह कार्य मुझसे नहीं होगा।

बहुत देखी हैं, मैंने ऐसी सुन्दरियाँ, जो शुरू शुरू में ब्रह्मचारी-बाला का ठप्पा लगाकर घूमती हैं, वे ही आज मेरी चौखट की धूल चाट रही हैं। नगरवधू ने अपना आक्रोश अभिव्यक्त किया।

माताजी! आप किसी ओर के दोष का लबादा मुझ पर क्यों डाल रही हैं? मेरा व्रत अटूट-अकंप है। मेरू की भाँति अचल है। चन्दना ने नम्र स्वरों में नगरवधू का प्रतिकार करना चाहा।

अरे ए जिद्दी लड़की! तूं मेरी दासी है। मैं जो चाहूँगी, वह तुझसे करवाऊंगी। पूरी बीस लाख स्वर्णमुद्राओं में खरीदा है तुझे।

पर मैं आपके साथ नहीं आ सकती। चन्दना ने पुनः प्रतिरोध किया।

देखती हूँ कैसे नहीं चल सकती। कहते हुए उसने चन्दना की केशराशि पकडी और खींचकर उसे चलने के लिये मजबूर करने लगी। ऐसी अशिष्ट दानवीय प्रवृत्ति देखकर आसपास सैंकड़ों लोग जमा हो गये। उनकी चेतना में करुणा के तंतु झनझना उठे। विरोधी पक्ष में से आवाज आयी-रोको! रोको! पशुता के इस चंगुल से इस निर्दोष बाला को छुड़ा लो।

नगरवधू ने एकाधिकार का तर्क और राज-भय का हौआ खड़ा किया पर विरोधी पक्ष भी प्रबल और विशाल था। उनका विरोध अत्यन्त कठोर था। अन्ततः नगरवधू इस शर्त पर चन्दना की मुक्ति के लिये तैयार हो गयी, यदि कोई बीस

लाख स्वर्णमुद्राएँ चुकाएँ! पर दासी के लिये इतनी बड़ी राशि चुकाएँ कौन? उस समय धनावह सेठ उसी रास्ते से गुजर रहा था।

चन्दना के निश्छल और निर्मल मुखमंडल से वह प्रभावित हुए बिना न रहा। वह तुरन्त आगे आया और मुँहमांगी राशि चुकाकर चन्दना को खरीद लिया। धनावह धन से ही नहीं, मन से भी समृद्ध था। उसके चेहरे पर छायी शालीनता और वत्सलता ने प्रथम क्षण में ही चन्दना को निःशंक बना दिया। वह तत्क्षण उनके चरणों में नम गयी।

धनावह ने चन्दना के माथे पर आशीष के फूल बरसाये।

बेटी! अब तुझे घबराने की कोई जरूरत नहीं है, तूं पिता के घर जो आ गयी है। चल अपने घर। वहाँ तुझे कोई कष्ट नहीं होगा।

तात्श्री! मैं आपकी ऋणी हूँ। आप न बचाते तो न जाने मेरी कैसी दुर्गति होती। कृतज्ञता की अनुभूति करती हुई भरे गले से चन्दना बोली-आपका उपकार मैं कभी भी भूला न सकूंगी।

छाया की तरह अनुगमन करती हुई चन्दना धनावह के रथ पर आरूढ हो गयी। मार्ग में धनावह सेठ ने पूछा-बेटी! तुम्हारा नाम क्या है?

जी ! चन्दना।

ओह! नाम तो तुम्हारा अत्यन्त मधुर है, ठीक तुम्हारी तरह। जिस तरह चन्दन घिस-घिस कर सुगंध देता है, उसका लेप ठण्डक देता है, ठीक वैसी ही है, तुम्हारे सुगंधित व्यक्तित्व की शीतल माधुरी।

धनावह चन्दना को लेकर गृहाँगन में पहुँचा। उसका स्पर्श पाकर बहती हवा भी जैसे माधुर्य से भर गयी।

प्रथम परिचय में ही चन्दना धनावह के हृदय में पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। इधर चन्दना का व्यवहार अत्यन्त मधुर, मृदु और शालीनता से परिपूर्ण था।

कुछ ही दिनों में सौजन्यशीलता के कारण वह सभी की प्रिय और चहेती बन गयी। गृहकार्य में भी वह निपुण थी अत: अपनी दक्षता से उसने कुछ ही दिनों में घर को स्वर्ग की तरह चमका दिया।

सामान्य दास-दासियों की भाँति दिन-रात परिश्रम करते देख यदा कदा सेठ की आत्मीयता शब्दों में अभिव्यक्त हो जाती- चन्दना! इतना कठोर श्रम न किया करो। और भी दास-दासियाँ हैं ही न।

अतिरिक्त स्नेहसिक्त माधुर्य पाकर चन्दना निहाल हो उठती- पिताश्री! पहली बात तो यह कि आपके वात्सल्य भरे शब्द सुनकर मेरी सारी थकान क्षण मात्र में छूमंतर हो जाती है। दूसरी बात परिश्रम जीवन का असली धन है। जो लोग श्रम करने से कतराते हैं, आलसी और प्रमत्त होकर पड़े रहते हैं, उनके भाग्य के द्वार अवरूद्ध हो जाते हैं।

चन्दना हर कार्य को भगवान की भक्ति मानकर करती। इस व्यवहार से धनावह प्रभावित तो था ही पर उसकी आराधना देखकर हृदय गौरव मिश्रित अनुमोदना से भीग जाता। यद्यपि चन्दना ने अपना परिचय दधिवाहन की पुत्री, एक राजकुमारी के रूप में न देकर अनाथ दासी के रूप में दिया था पर दैनिक जप-तप, आराधना, नवकारसी, सामायिक जैसे अनेक अनुष्ठान उसके शालीन एवं कुलीन होने के स्पष्ट संकेत थे। इससे उनका वात्सल्य भाव लगातार गहरा होता जा रहा था।

चन्दना की नम्रता और धनावह की आत्मीयता के समीकरण ने मूला सेठानी के मन में संदेह के बीज बो दिये। सेठजी भले ही इसे दासी कहते हैं पर दासत्व जैसा कुछ नहीं है। यहाँ तो प्रेम-लीला चल रही है। कल यदि ये दासी रानी बन बैठी तो मैं कहीं की नहीं रहूँगी। अच्छा यही है कि इस विष वल्लरी को फैलने से पहले ही उखाड़ दिया जाये।

यद्यपि पतिदेव एक पत्नी का व्रत ग्रहण कर चुके हैं पर सुन्दरता के आगे बड़े बड़े ऋषि-महर्षि के हृदय आसन कांप जाते हैं तो भला इनकी क्या बिसात? क्या चन्दना का बढता-चढ़ता यौवन इनको प्रभावित नहीं करेगा!

अब तक-आज तक चन्दना जिस सेठानी की दृष्टि में बेटी से कम नहीं थी, वही अब सौत की भाँति खटकने

लगी।

मूला के पास ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं था अत: चन्दना को घर से निष्कासित करना सम्भव न हुआ पर उसके व्यवहार में परिवर्तन जरूर आ गया।

सन्देह के अंधेरों में ममता भरा बेटी का सम्बोधन कहाँ खो गया, यह खोजना भी मुश्किल ही था।

मन दुराग्रह और कटुता से भरता जा रहा था। कभी कभी कटुता कटाक्ष में, उग्रता अथवा आक्रोश में अभिव्यक्त हो उठती। सेठजी मूला के इस बदले-बदले से व्यवहार से अचंभित थे तो चन्दना की गजब की सहनशीलता से अभिभूत भी कम नहीं थे।

मूला की आग्रहों से परिपूर्ण मानसिकता से वे चन्दना के प्रति अधिक चिन्तित हो उठे। घर में एक दिन तो जैसे भूचाल-सा आ गया। अपराह्न हो चुका था। सेठजी विपणि से व्यापार कर लौटे तब उन्हें पाद-प्रक्षालन के लिये पानी की जरूरत थी।

उन्होंने दास-दासियों को आवाज दी पर घर में चन्दना के अतिरिक्त कोई उपस्थित न था। वह अपने कक्ष में भीगे केश सूखाने में प्रयत्नशील थी। जैसे ही उसके कानों से आवाज टकरायी, वह पानी लेकर दौड़ी-दौड़ी पहुँच गयी।

सेठजी के लाख मना करने पर भी अपने हाथों से उनका चरण-प्रक्षालन करने लगी। हुआ ऐसा कि चन्दना की खुली केशराशि कंधे से गिरती हुई पंकिल नीर का स्पर्श करने लगी। धनावह की पितृत्व से भीगी दृष्टि ज्योंहि केशराशि पर पड़ी, उन्होंने गन्दे जल में गिरते हुए केशों को अपने हाथों में थाम लिया।

निकटस्थ कक्ष के वातायन से यह सारा दृश्य देखकर मूला के हृदय पर तो जैसे गाज गिरी। यद्यपि केशराशि का उठाना सेठजी के वात्सल्य भाव का ही परिचायक था पर मूला इसे अन्यथा ले बैठी। उसका सन्देह सच्चा हो गया। ओह! तो ये दोनों छिपकर इस प्रकार प्रेम की परिभाषा रचते हैं। पति के बाहर जाते ही चन्दना पर जैसे शामत आ

गयी–अरे ए धूर्त छोकरी! मुझे पहले से ही तेरे चारित्र पर सन्देह था, आज तो पक्का ही हो गया। लोगों में तो पिताजी! पिताजी! रटती फिरती है और पीछे से प्रेम के नाटक रचती है।

पापिनी! तूं कितने भी प्रयत्न क्यों न कर ले पर तेरी मंशा कभी पूरी नहीं होगी। मूला तो जैसे दावानल की तरह सुलग उठी। आँखों से चिंगारियाँ बरसाने लगी। पर चन्दना एक शब्द भी न बोली। अपने नाम पर सार्थकता के हस्ताक्षर करती हुई प्रशान्त भाव से सब कुछ सहन करती रही।

अब चन्दना का कांटा पल–पल आंखों में चुभने लगा। जी तो करता था कि इसका काम ही तमाम कर दिया जाये पर सेठजी की उपस्थिति में असम्भव था। अब तो वह ऐसे अवसर की प्रतीक्षा में थी कि साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।

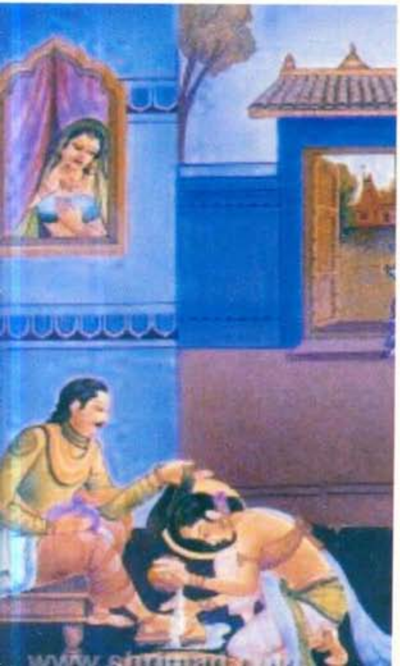

एक दिन सेठजी को किसी आवश्यक कार्यवशात् ग्रामान्तर जाना पड़ा। मूला को मनचाहा उपयुक्त अवसर प्राप्त हो गया। कुटिलता ने निर्दयता के आकाश में पंख पसारने शुरू कर दिये। योजना तो वह कब की बना चुकी थी। पर इस कार्य के लिये किसी का सहयोग भी उसे अभीष्ट था जो कि उसे सहज ही प्राप्त हो गया।

राधा उसकी मुँहबोली दासी थी। अधिकतर वो ही मूला के आवश्यक कार्यों को सम्पादित करती थी।

मूला ने उसे प्रलोभन देते हुए कहा–राधा! एक कार्य है, वह भी अत्यन्त निजी।

राधा बोली–सेठानीजी! आप कहकर तो देखिये। आपके हर कार्य को मैं पग पर खड़ी–खड़ी पूरा करूँगी। राधा ने विनम्र आश्वासन दिया।

तूं किसी को कहेगी तो नहीं? कहती हुई मूला ने प्रश्नायित नजरें राधा के मुख पर

टिका दी।

मालकिन! क्या बात करती है आप। दबी आवाज से राधा बोली–आपकी कसम! किसी व्यक्ति को तो क्या, पशु–पंखी तक को भनक नहीं पड़ेगी।

मूला एकदम उत्साह में आ गयी। उसका काम इतनी सरलता से सध जायेगा, ऐसा उसने कभी नहीं सोचा था।

मालकिन! आप मेरी तरफ से सर्वथा निस्संकोच रहिये और कोई कार्य हो तो कह दीजिये। पुनः अपनी बात को बल दिया।

राधा! तूं तो अच्छी तरह जानती ही है कि ये धूर्त चन्दना मुझे तनिक भी नहीं सुहाती है। दिन–रात मेरे दिल में ये शूल की भाँति चुभती रहती है। यदि इसे ठिकाने नहीं लगाया तो देखना, ये कुटिल दासी एक दिन मुझे घर से निकालकर पैसे–पैसे की मोहताज बना देगी।

राधा स्वयं किसी ऐसे अवसर की ताक में थी। उसका मन मयूर नाच उठा क्योंकि चन्दना के आने के बाद उसका दबदबा कमजोर हो चला था! सेठजी उस पर भरपूर स्नेह बरसाते थे तो दूसरी ओर चन्दना समस्त भृत्यवर्ग की नजरों में आदरणीया और प्रीति–पात्र बन गयी थी। अल्पावधि में चन्दना के बढ़े–चढ़े प्रभाव को देखकर राधा तो वैसे ही मन में चिढ रही थी। इसलिये उसने मूला सेठानी की ईर्ष्या और अपमान की आग को भड़काते हुए कहा–मालकिन! चन्दना की दृष्टि केवल और केवल इस आलीशान भवन और धन–धान्य से भरे भण्डारों पर है। बड़ी चालबाज है वह धूर्त लड़की। मुझे तो इसकी नीयत में खोट लगती है और आप इसकी तरफ आँख मूंदकर पड़ी रही, यह तो अत्यन्त अचरज की बात है।

मूला एकदम जैसे प्रतिशोध लेने के अंदाज में आ गयी। राधा का मन सेठजी से आतंकित था। वह तनिक घबराती हुई बोली–यदि सेठजी को हमारी काली करतूत का पता चल गया तो?

मूला बोली–असंभव! वे इन दिनों प्रतिष्ठान के कार्यार्थ बाहर गये हुए हैं, अत: तुम्हारी चिन्ता का कारण निर्मूल है।

आक्षेप, डांट–डपट और दुर्व्यवहार भरे इन दिनों में भी चंदना समाधि में थी। उसने जहर के हर घूंट को हँसते–हँसते पीने का निर्णय जो कर लिया था। उसके हृदय में मूला के प्रति तनिक भी आवेश या उत्तेजना के भाव न थे। वह तो वैसी ही विनम्र, उदार और कृतज्ञता से भरी थी। कड़क, निष्ठुर अथवा कषायग्रस्त स्वभाव को जब सेठानी नहीं छोड़ती तो भला मैं क्षमा, समता और मधुरता को तिलांजलि क्यों दूँ? आग का साहचर्य मिलने से क्या जल शीतलता का परित्याग कर देता है? राहुग्रस्त होने पर क्या चन्द्र चाँदनी बिखेरना छोड़ देता है?

मूला का मन षड्यन्त्र की निष्पत्ति में उत्साह से भर गया। उसने राधा को योजना के प्रथम चरण क्रियान्विति की सारी जिम्मेदारी सौंप दी। पहली भेंट में ही शताधिक स्वर्ण मुद्राओं का उपहार पाकर राधा सेठानी के चरणों में गिर पड़ी–देवी! आप तो उदारता की प्रतिमूर्ति है। वास्तव में आपकी करूणा और कृपा का कोई पार नहीं।

राधा योजनानुसार कार्य की तैयारी में लग गयी। रात्रि हो चुकी थी। सभी दास–दासी कार्य से निवृत्त हो चुके थे। चन्दना भी शयन की तैयारी में थी कि आदेश मिला–चन्दना! मेरे साथ चल! मुझे कोई आवश्यक कार्य करना है।

तलघर में यों भी जाने का काम कम ही पड़ता था पर रात्रि में तलघर में जाना चन्दना के लिये किसी आश्चर्य से कम नहीं था। पर उसे तो हर कार्य को आदेश मानकर करना ही था। राजकुमारी होने का चन्दना को तनिक भी अहंकार न था। छोटे–बड़े, हर कार्य को वह अत्यन्त सहजता से सम्पन्न करती थी।

चन्दना मूला के पीछे–पीछे तलघर में पहुँच गयी। राधा पहले से ही वहाँ नापित (नाई) के साथ उपस्थित थी। उसके हाथ में हथकड़ी और बेड़ी थी। चन्दना कुछ भी अनुमान लगाये, उसके पहले मूला ने दरवाजा बंद कर दिया। तलघर के गहन अंधकार में केवल एक दीप जल रहा था।

कुछ ही क्षणों में चन्दना की केशराशि उतरने लगी। यह देख मूला जैसे मन ही मन बोल उठी–इस केशराशि में ही तो सेठजी का मन उलझा था। चलो! सारी उलझनें सुलझ गयी।

हाथों में हथकड़ियाँ और पाँवों में बेड़ियाँ डाल दी गयी।

विरोध तो छोड़ो, चन्दना उफ तक नहीं कर पायी क्योंकि उसके मुँह में तो पहले से ही एक मोटा कपड़ा ठूंस दिया गया था। यह सब हो जाने के बाद राधा ने द्वार बंद कर उस पर मोटा ताला जड़ दिया। मेरी छाती पर मूंग दलने वाली इस छोकरी की अक्ल अब ठिकाने आयेगी। आज तो जैसे भावी आतंक की इतिश्री हुई, समझो।

षड्यन्त्र की बूं सेठजी को न लगे, इसलिये मूला तो दूसरे ही दिन मायके की ओर प्रस्थान कर गयी।

इधर बन्द कोठरी में चन्दना का श्वास लेना तक दुभर हो गया। मुँह में ठुंसा हुआ कपड़ा उसकी प्राणशक्ति को अवरूद्ध कर रहा था। उसने जैसे-तैसे कपड़ा मुँह से बाहर निकाला, तब कहीं जाकर थोड़ी राहत मिली। जल रहा दीपक भी कुछ पलों में बुझ चुका था, चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा बिखरा हुआ था।

चन्दना सोच रही थी–यह क्या! मैं तो सदा से माँजी की सेवा करती आयी हूँ। उनकी आज्ञा-पालन में कभी भी पीछे नहीं रही, फिर उन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया?

उसे तुरन्त कारण समझ में आ गया–ओह! तो माँजी ने उस घटना का बदला लिया है, जब सेठजी ने मेरे केशों को गंदे पानी में गिरने से बचा लिया था। पर उस कार्य में कहाँ थी विकार और वासना की अपवित्रता। वास्तव में माँजी पहले से ही मेरे प्रति सन्देहग्रस्त है। मुझे शंका की दृष्टि देखती रही है। पर इस सम्बन्ध में पिता और पुत्री की पवित्रता है, न कि कोई कुत्सित विचार-प्रवाह। विकार उनकी दृष्टि में है, अत: वे उस दृष्टि से ही देखती है। जब दृष्टिभ्रम हो जाता है, तब व्यक्ति रस्सी में साँप का और सीप में रजत का निर्णय कर लेता है।

मुझे माँजी की निष्ठुरता का कारण समझ में आता है पर राधा का नहीं, जिसे मैं सदा से ज्येष्ठ भगिनी का सम्मान

देती आयी हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि सेठजी की मेरे प्रति वात्सल्य और संरक्षण की अति में उसका मन प्रतिशोध और ईर्ष्या से जल उठा हो। अकस्मात् उसकी सोच का प्रवाह बदला- अरे! मैं यह सब क्या सोच रही? इसमें न तो माँजी का दोष है, न राधा का। दोष केवल मेरे कर्मों का है। मेरे पूर्व भव के ही पापकर्म उदय में आये हैं। उपादान तो मैं ही हूँ, वे तो निमित्तभर बने हैं। अत: मुझे न कषाय करना है, न रोष। बस! समता और धैर्य से इस प्रतिकूलता को बधा लेना है।

अर्हत्-धर्म पाकर भी यदि चेतना का रूपान्तरण नहीं हो पाया तो उसे पाने का अर्थ ही क्या रहा? यह तो उपकार है माँजी और राधा का, जिन्होंने मुझे अन्तर्यात्रा का भरपूर अवसर उपलब्ध करवाया है। दिन भर के पचासों कामों में समय कहाँ मिल पाता है। यहाँ नितान्त एकान्त है, भरपूर समय है और आत्म-समीक्षा में उतरने से पहले चन्दना ने उपवास का प्रत्याख्यान कर लिया। तीन दिनों में चन्दना के तेला हो चुका था। और चौथे दिन के भी दो प्रहर पूर्ण हो चुके थे।

इधर धनावह को बाहर से आये एक प्रहर पूरा होने आया पर चन्दना कहीं भी दिखी नहीं थी। उसकी उपस्थिति सेठजी को आत्मिक संतोष और गहरा सुकून देती थी। उन्होंने दास-दासियों से पूछा तो जवाब मिला-आप जिस दिन गये थे, उस रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद चन्दना को नहीं देखा।

सेठजी की चिन्ता और बढ़ गयी। चन्दना आखिर गयी तो गयी कहाँ। वे मूला से पूछना चाहते थे पर पता चला कि वह तो पीहर गयी हुई है।

वर्षों से गृहकार्य में कार्यरत एक दासी से रहा न गया। उसने धीरे से कहा-सेठजी! चन्दना नीचे वाली कोठरी में बंद है।

क्या कहा? चन्दना कोठरी में बंद है? साश्चर्य धनावह बोले। मुखमण्डल रक्ताभ हो उठा। पर यह सब हुआ कैसे?

दबी जुबान दासी बोली–धृष्टता क्षमा करें। सेठानी जी ने ही चन्दना को बंद किया है।

धनावह मूला की शंकाशील मानसिकता से पूर्णतया परिचित थे। क्रोधाविष्ट हो बोले–तुझे पता था, तो तूंने दरवाजा क्यों नहीं खोला।

हुकुम ! मैं खुद चाहती थी पर दरवाजे पर मोटा ताला जड़ा हुआ था।

एक पल की भी देरी किये बिना धनावह ने हथोड़ा मंगवाया और ताला तोड़ डाला।

भूगर्भस्थ कोठरी में घुप्प अंधेरा था।

धनावह बोला–बेटी! चन्दना! दौड़ता हुआ वह चन्दना के पास पहुँचा।

हाथों में हथकड़ी, पाँवों में बेड़ी और केशविहीन मस्तक! चन्दना की दयनीय अवस्था देखकर धनावह का हृदय भर आया। मैं चार दिन बाहर क्या गया, जैसे पहाड़ टूट पड़ा। मेरी बिटिया तीन दिन की भूखी–प्यासी भूगर्भ में बंद पड़ी रही। धनावह की आँखों से आँसू बह चले।

चन्दना शांत और गंभीर तो पहले से ही थी पर अब और अधिक प्रशान्त हो गयी थी।

एक बार फिर 'चन्दनबाला' नाम को सार्थक करती हुई बोली–बापू! इसे अन्यथा लेने का समय नहीं है। अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी कौन कर सकता है? जो होना था, हो गया। आप और कुछ भी मत विचारिये।

हथकड़ी और बेड़ी को तोड़ने का कोई सामान न था। जैसे तैसे चन्दना को भोयरे से बाहर ले आया।

तीन दिन के उपवास से चन्दना की देह मुरझा गयी थी पर उसका तेज और ओज क्रमशः वर्धमान था। कषाय और क्रोध का छोटा-सा अग्निकण भी उसके मन या वाणी का स्पर्श नहीं कर पाया। अत्यन्त अद्‌भुत था उसका प्रभावक, शीतल और सौम्य आभामण्डल।

धनावह तुरन्त पाकगृह में पहुँचा। कुछ भी खाद्य सामग्री मिल जाये तो पारणा हो जाये पर वहाँ उबले हुए उड़द के बाकुलों के अलावा कुछ न था। ममता उंडेलता हुआ धनावह बोला-बेटी! तूं तीन दिनों से भूखी-प्यासी है। और तो कुछ मिला नहीं, ले ये सूपड़े में जो उड़द के बाकुले हैं, उन्हें खाकर पारणा कर ले। सूपड़ा चंदना को थमा सेठ उसी समय हथकड़ियाँ व बेडियाँ तुडवाने हेतु लुहार को बुलाने चल पड़ा।

चन्दना जैसे ही पारणा करने को उद्यत हुई, तत्काल उसके मन में एक अनुत्तर स्फुरणा हुई-आज मेरे तेले का पारणा है, तो क्यों न किसी मुनि भगवंत को वोहराकर ही पारणा करूँ।

किसी तरह घसीटती-घसीटती वह मुख्य द्वार पर जा पहुँची। एक पाँव दहलीज के इस पार, एक उस पार। मोर जैसे बादल का, चकोर जैसे चाँद का इन्तजार करता है, वैसे ही प्यासी आँखों से चन्दना वहीं बैठकर मुनिवर की प्रतीक्षा करने लगी। इधर महात्मा महावीर की साधना का बारहवाँ वर्ष चल रहा था। उनकी साधना और साध्य दोनों ही अनुत्तर थे।

कौशाम्बी के द्वारा चंपा को लूटने की घटना जहाँ स्वार्थ- प्रधान जीवन का प्रतिबिम्ब थी, वहीं शील की अखण्डता के लिये धारिणी का मृत्यु की वेदी पर चढ़ जाना नारी-जगत के गौरव का अनूठा हस्ताक्षर था।

ओह! मानव का मानव के प्रति निशृंस अपराध। जब तक परस्पर साम्यता का सूत्र जीवन धरातल पर नहीं उतरेगा, तब तक पुरुष नारी की अस्मिता के साथ योंहि खिलवाड़ करता रहेगा।

इन घटनाओं के दर्पण में महाश्रमण महावीर ने नारी-उद्धार का अनूठा संकल्प कर लिया-राजकुमारी हो पर उसके हाथों में हथकड़ी और पाँवों में बेड़ी हो, मस्तक मुंडा हुआ हो, एक पाँव दहलीज के भीतर और दूसरा बाहर हो, हाथों में उड़द के बाकुले और आँखों में आँसू की धार हो, उसके हाथों से ही आहार लेने का अभिग्रह धार लिया।

महाश्रमण महावीर का यह दिव्य संकल्प नारी जाति के गौरव व सम्मान के पक्ष में प्रथम कदम था।

प्रतिदिन महाश्रमण गोचरी के लिये प्रस्थान करते और खाली हाथ लौट आते। दिन बीते, पक्ष बीते और देखते-देखते पाँच महीने पूर्ण हो गये। सम्पूर्ण कौशाम्बी की हवाओं में एक ही चर्चा थी-महाश्रमण आते हैं गोचरी के लिये और रिक्त पाणिपात्र ही प्रत्यावर्तित हो जाते हैं।

शतानीक ने कारण भी पूछा पर प्रभु मौन थे।

अब तो पाँच महीनों पर पच्चीस दिन भी पूर्ण हो चुके थे पर उनका अभिग्रह-बल दृढ़ हो रहा था। दिन का तृतीय प्रहर गतिमान था और प्रभु का तपस्तेज क्रमशः वर्धमान था।

इधर चन्दना सोच रही थी-तेले का पारणा सुपात्रदानपूर्वक हो, उससे महान् भाग्य और क्या होगा? काश! कोई मुनिवर पधार जाये तो मेरे भव-भव के संचित पाप-कर्मों का क्षय हो जाये। इतने में गवैषणा करते हुए महावीर ने उसके द्वार पर दस्तक दी।

ओह! मेरी कामना फलीभूत हुई। मेरा जीवन आज धन-धन्य हो गया। चन्दना की आँखें प्रसन्नता से चमक उठी।

राजकुमारी, हाथों में हथकड़ी, पाँवों में बेड़ी, मुंडित मस्तक। इस प्रकार अभिग्रह की सारी बातें मिल गयी पर आँखों में आँसू नहीं थे।

चन्दना कह उठी-पधारो भगवन् ! पर महाश्रमण उल्टे पाँवों लौट गये। महासूर्य ने द्वार पर दस्तक दी और उजाला किये बिना ही लौट गया। चन्दना की पीड़ा का पार न रहा।

प्रभो! ये क्या किया? पधारे भी सही और प्रतिलाभ दिये बिना ही प्रत्यावर्तित हो गये। मुझ अनाथ पर आपको किंचित् भी दया नहीं आयी। करुणावतार! आप इतने निष्करुण कैसे बन गये कि इस अभागिन के हाथों से आहार लेना रास नहीं आया।

एक दु:खियारी, जिसने माता-पिता का बिछोह सहा, पशु की भाँति हाट में बिकी और आज दासी का जीवन जी

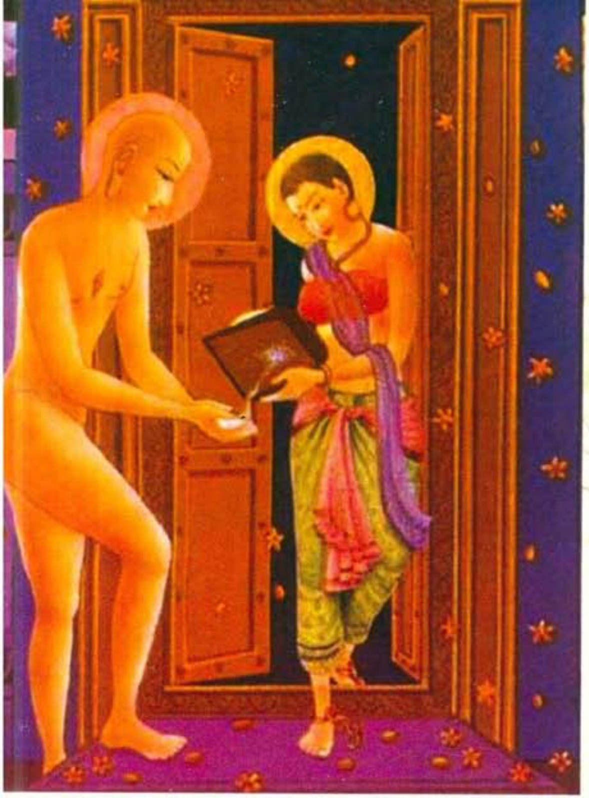
महाश्रमण महावीर को चन्दनबाला के द्वारा श्रद्धापूर्ण दान

रही। उसमें एक मात्र आपका ही सम्बल था। सारी दुनिया के दुःख एक तरफ और प्रभु की शरण एक तरफ। पर वह सहारा भी आज छिन गया। अरे! प्रभो! आप भी झूठे निकले। आपको भी इस अबला पर करुणा नहीं आयी। कहते-कहते चन्दना हलक फाड़कर रो पड़ी। उसका रूदन-क्रन्दन सुना और प्रभु के कदम मुड़ गये।

चन्दना के आँसूओं की खिन्नता प्रसन्नता में बदल गयी।

ओह! प्रभु की कृपा बरस गयी। मेरे भवोभव के सारे दुःखों का अन्त हो गया।

ओ परमेश्वर! ओ करुणावतार! मैं कृतार्थ हुई....मेरा जीवन सार्थक हुआ, कहती हुई चन्दना की श्रद्धा अनन्त हो चली, शब्द कम पड़ गये। महाश्रमण ने पाणिपात्र आगे बढ़ाया और चन्दना ने उड़द के बाकुले वोहरा दिये। तत्क्षण नभमण्डल में देवविमान उमड़ आये। 'अहोदानम् अहोदानम्' के दिव्य उद्घोष से प्रकृति नृत्य कर उठी। पंचवर्णी पुष्पों की वर्षा ने वायुमण्डल को सुवास से भर दिया और देवों ने करोड़ों स्वर्णमुद्राओं की वर्षा की।

इसके साथ ही चन्दना हथकड़ियों-बेड़ियों के बंधन से मुक्त हो गयी। उसका सौन्दर्य वैभव हजारों गुणा बढ़कर खिल उठा।

पवन-वेग की भाँति यह सारा दिव्य घटनाक्रम कौशाम्बी में प्रसारित हो गया। महाश्रमण का पारणा हो गया, यह सुनकर शतानीक का मुँह खुला का खुला रह गया। हजारों लोगों की भीड़ को चीरकर शतानीक पत्नी सहित तुरन्त वहाँ

आ पहुँचे।

मूला और राधा चमत्कारिक घटना सुनकर तत्काल घर पहुँच गयी। करोड़ों स्वर्णमुद्राओं को जैसे ही मूला बटोरने लगी त्योंहि देव वाणी गूंजी-यह सारी स्वर्ण-राशि चन्दनबाला की है। जो भी इसे बटोरने का यत्न करेगा, उसके हाथ भूमि से चिपक जायेंगे।

लोगों की आँखें आश्चर्य से चौड़ी हो गयी। भृत्य वर्ग के मुख पर तो जैसे आनंद का सागर कल्लोल कर रहा था-महाश्रमण कितने दयार्द्र.....कितने कृपालु और उदार! हजारों श्रीमंत तो क्या राजा स्वयं उनके चरणों में कृपा की कांक्षा लिये पहुँचा था पर एक दासी के हाथ से दान लेकर हीन और महान् की सारी परिभाषाएँ ही बदल डाली।

चन्दना की दासता, एक राजकुमारी का संकट-काल। मृगावती के आँसू रोके नहीं रुक पाये। शतानीक में माथा ऊँचा उठाने तक की हिम्मत नहीं रही।

धारिणी के उत्सर्ग की घटना याद आते ही उसकी रूह कांप उठी! प्रायश्चित्त से आँसू बह चले।

शतानीक तो चन्दना को पहचान न पाये पर मृगावती, जो रिश्ते में उसके मौसी लगती थी, उसे पहचानने में कोई ज्यादा समय नहीं लगा।

तनये! चन्दना! कहते हुए उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। इधर धनावह लुहार की दुकान पर खड़ा था। उसे तो बस चन्दना की ही चिन्ता सता रही थी। दुंदुभि निनाद, अहोदानम् का महाघोष उसके कानों से टकराया भी सही पर चन्दना की वेदना में गलगला होता हुआ जैसे वह कुछ भी सुन न पाया। ज्योंहि लुहार को लेकर घर पर पहुँचा कि अद्भुत चमत्कार को देखकर उसकी आँखें खुली की खुली रह गयी।

धनावह का कलेजा गौरव से भर आया। मेरा पूर्वानुमान शत प्रतिशत सही था। पर एक राजकुमारी और इतनी शान्त....निर्दोष...निरभिमानी! इसका निष्कलंक जीवन नारी इतिहास का एक अनूठा आलेख है।

मूला को अपने अकृत्य के प्रति धिक्कार हो आया। अरे ! मैंने अपने ही हाथों अपने पाँवों पर प्रहार किया। वह कितनी सरल और मैं कितनी कपटी। उसने मुझे सदा माँ का सम्मान दिया और मैं उसे सोत समझकर सताती रही।

वह अनुताप के आँसू बहाती हुई कहने लगी-बेटी! मैं तेरी अपराधिनी हूँ। यद्यपि मेरा अपराध अक्षम्य है, पर तूं क्षमा की देवी है। चन्दना! मुझे माफ कर दे।

चन्दना बोली-माँजी! आप यह क्या कह रही है। यह तो आपका ही अनुग्रह है कि मुझे आत्म-अवलोकन का अनुपम अवसर मिला। मेरे तेले का तप हुआ। मैं महाश्रमण की महाकरुणा की पात्र बनी।

अपकार को भी उपकार की भाषा में कैसे बदलना, यह कोई चन्दना से सीखे।

मृगावती के अत्याग्रह को वह नकार न सकी और कुछ दिन मौसी के पास व्यतीत कर वह चंपा पहुँच गयी। वहाँ स्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी थी।

सम्राट् दधिवाहन कुरंगा को जीत कर चंपा पहुँचे, उससे पहले अप्रत्याशित आक्रमण का संदेश संदेशवाहक से मिल चुका था। उन्होंने शीघ्र ही चंपा के लिये प्रस्थान किया। शव मण्डित भूमण्डल....रक्त की बहती नदियाँ...प्रजा की दयनीय अवस्था देखकर उनके कोप का पार न रहा।

धारिणी और चन्दना को महलों में न पाकर उसका मस्तिष्क फटने लगा। उन्होंने खोज-खबर करवाई। धारिणी की निर्जीव देह प्राप्त हो गयी पर चन्दना का कोई पता न लगा। इन सारी घटनाओं ने उन्हें वैराग्य के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया।

प्रतिशोध से शान्ति की कल्पना करना आधारहीन है। शान्ति और सुकून पाने के लिये योग के साम्राज्य में प्रविष्ट होना अनिवार्य है। दधिवाहन राजकुमार करकण्डु को राज सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर आत्म-सिंहासन की दिशा में चल पड़े।

भगिनी चन्दना की अप्रत्याशित प्राप्ति से करकण्डु के हृदय में हर्ष का कोई पार न था। सम्पूर्ण प्रजा ने प्रेम और सम्मान से इस शुभ संवाद को बधाया।

चन्दना के लिये यह अत्यन्त सुखद प्रसंग था कि महाश्रमण महावीर साधनाकाल का बारहवाँ वर्षावास चम्पा में कर रहे थे। यद्यपि महल में शान-शौकत के साधनों की भरपूर झड़ी लगी हुई थी पर चन्दना का मन-मानस उनसे सर्वथा निर्लिप्त था। पूरे चार महिने महाश्रमण के सानिध्य में चन्दना अध्यात्म की निर्मल धारा में भीगती रही। महावीर चातुर्मास के बाद विचरण कर गये तो चन्दना का रोम-रोम विरहाग्नि में झुलस उठा।

एक बार वह पिताश्री महर्षि दधिवाहन की सेवा में प्रस्तुत हुई। दधिवाहन चन्दना की निर्लिप्तता को

देखकर प्रसन्नता से भर गये। उन्होंने उज्ज्वल भविष्य का दिग्दर्शन करवाते हुए कहा-चन्दने! तूंने जिस श्रमणश्रेष्ठ को आहार-दान किया है, वे होने वाले चरम-परम तीर्थंकर महावीर है। इस गौरव से चन्दना पुलक उठी। और चन्दने! तेरा भाग्योदय हो चुका है। सारे पाप-संताप पलायन कर चुके हैं। तूं उन महाश्रमण महावीर के शासन की प्रथम साध्वी होने का गौरव प्राप्त करेगी। इसके लिये तुझे अब अपने आपको अधिकतम तराश लेना है।

वंदनाएँ प्रेषित कर चन्दना पुनः महलों में लौट आयी पर अब उसका मानस अत्यधिक विरक्ति की ओर अग्रसर था।

इस तरफ महाश्रमण महावीर ऋजुबालिका नदी के किनारे जृंभक ग्राम में आत्मस्थ थे। उनकी अध्यवसाय विशुद्धि वर्धमान होती हुई वैशाख शुक्ला दशमी को क्षपक श्रेणी में आरूढ हो चली। गोदुग्धासन में घाती कर्मों का आत्यन्तिक क्षय कर अनुत्तर ज्ञान की ज्योति से महावीर की आत्मा जगर-मगर हो उठी।

देव-देवी आये। समवसरण में देशना की अमीधारा बही पर किसी ने भी व्रत-महाव्रत स्वीकार नहीं किया। आश्चर्य घटा। महाप्रभु की प्रथम देशना निष्फल गयी। प्रभु वहाँ से विहार कर मध्य पावा पहुँचे। वैशाख शुक्ला एकादशी को गौतम आदि ग्यारह महापण्डितों को दीक्षित कर गणधरों की स्थापना की।

चन्दना भी प्रभु के सम्मुख उपस्थित थी। विरक्ति की निष्पत्ति के पुण्य-पल आ चुके थे। वह करबद्ध हो श्रद्धा से कह उठी-भंते! मेरा संसार के प्रति कोई अनुराग नहीं है। यद्यपि आप मेरे भावी से पूर्णतया परिचित है तथापि निवेदन है कि अपने संघ में मुझे दीक्षित करके मेरा उद्धार करें।

इसमें विलम्ब को स्थान नहीं चन्दने! आत्मा पूर्वकृत कर्मों में लिप्त होती हुई पुनः पुनः कर्माश्रव को आमन्त्रित करती है पर जिसने आत्म-सत्ता की स्वाभाविक अनुभूति की है, वह क्रमशः कर्म-प्रवाह को क्षीण करता हुआ एक दिन अक्षीण परमात्म ज्योति में एकाकार हो जाता है। आत्म-ज्योति की दिशा में तुम्हारा यह मंगलमय प्रस्थान निश्चित

ही अभिनन्दनीय है।

चन्दना के कदम करकण्डु की दिशा में बढे।

भ्राते! मेरी विरक्ति की पगडंडियों के चरण-चिह्न तुम्हारें सम्मुख स्पष्ट हैं। मैं अब महाश्रमण के महापथ की अनुगामिनी बनना चाहती हूँ। आपके आशीष का वरदान मुझे इस मंगल वेला में अभीष्ट है। कृपया अनुज्ञा प्रदान करके भ्रातृत्व को सार्थक करे।

चन्दना के प्रति करकण्डु की गहरी प्रीति थी तो वह उसकी विरक्ति से भी चिरपरिचित था। भरे गले से इतना ही कह पाया-बहिना! तेरा मार्ग निश्चित ही श्रेयस्कर है। शीघ्र कर्मराशि को खपाकर अपने लक्ष्य में उत्तीर्ण बनो।

चन्दना के भाग्य के दरवाजे खुल गये। वह कृतज्ञ भावों से करकण्डु के चरणों में नम गयी। धनावह सेठ, मूला सेठानी ने भी उसे आशीष दिये। प्रभु महावीर के संघ में दीक्षित हो चन्दना प्रथम साध्वी होने का महागौरव प्राप्त कर गयी।

महाश्रमण का संघ क्रमशः विस्तृत होता हुआ महासंघ बन गया। चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार साध्वियाँ परम कल्याण के मार्ग पर गतिशील थी। आर्हत् धर्म में अग्रसर श्रावक-श्राविकाओं की संख्या लाखों को पारं कर चुकी थी।

और एक बार महासती मृगावती प्रभु की पर्षदा में देशना सुनने पहुँची थी पर लौटने में देरी हो गयी। सूर्यास्त के उपर दो चार घटिकाएँ बीतने पर पहुँची तो श्रमणी प्रमुखा चन्दना ने भर्त्सना करते हुए कहा-मृगावती! तुम्हारा यह आचार श्रमणचर्या के अनुरूप नहीं है। तुम्हें अपने आचार के प्रति सजग रहना चाहिए ।

मृगावती प्रतिक्रमण के उपरान्त अत्यन्त अनुताप से भर गयी। अरे! मैंने यह क्या किया? महासतीजी को मेरे कारण क्रुद्ध होना पड़ा। मैं उनकी अशान्ति में निमित्त बनी। पश्चात्ताप के सागर में मृगावती डूबी तो ऐसी डूबी कि

कैवल्य के मोती बटोर कर ही बाहर आयी। अर्द्धरात्रि के गहन अन्धकार में उसकी आत्मा आलोक से नहा उठी।

कुछ समय बाद उसने देखा कि एक भयंकर कृष्ण भुजंग महासती चन्दना की ओर आ रहा है और महासतीजी निद्राधीन हैं। सहज ही मृगावती ने सर्प की राह आसान करने के लिये साध्वी चन्दना का हाथ अन्य दिशा में घुमाया कि महासती निद्रा से जागृत हो गयी।

क्या बात है मृगावती? यह अनावश्यक प्रवृत्ति क्यों?

भगवती ! सर्प का मार्ग निष्कंटक करने के लिये मुझे यह करना पड़ा।

कहाँ है सर्प? मुझे तो नजर नहीं आ रहा।

मृगावती ने विनयावनत हो कहा-वह तो बीच में से ही प्रत्यावर्तित हो गया।

गहन अंधकार में जब मुझे कुछ भी नजर नहीं आ रहा तो भला तुझे कैसे दिखा? ऐसे कह रही हो जैसे केवलज्ञान हो गया है तुम्हें।

गुरुमैया! यह सब आपकी अनुत्तर कृपा का ही परिणाम है। सुनकर जैसे चन्दना चौंकी।

साश्चर्य उसने प्रश्न किया-क्या तुम्हें केवलज्ञान हुआ है?

मृगावती बोली-महासती! आपके सम्बोध ने मुझे जगा दिया है । मेरी आत्मा में अब अज्ञान और मोह के आवरण

नहीं रहे। साध्वी चन्दनबाला को तो जैसे काटो तो खून नहीं। इससे आगे कुछ बोलते ही नहीं बना।

धिक्कार है मुझे! मैं एक केवली की आशातना कर बैठी। क्या हो गया था मुझे? मैं क्यों नहीं समझ पायी परिस्थिति को? भावधारा का ऐसा दिव्य प्रवाह बहा कि आत्म-प्रदेशों पर लगी कषाय और अबोधि की धूल उड़ गयी। अज्ञान की दीवारों को गिराकर उसी समय साध्वी प्रमुखा चन्दनबाला भी अप्रतिपाती ज्ञान की महाज्योति को उपलब्ध हो गयी। एक ही रात्रि में कैवल्य के दो-दो महासूर्य चमक उठे।

नारी जाति की इस गौरवमयी कथा की महानायिका चन्दनबाला इतिहास के पन्नों पर ऐसे पद-चिह्न अंकित कर गयी, जिस पर चलकर नारी वर्ग ने अपनी अस्मिता को गौरवान्वित किया है और श्रद्धा व शील की देवी के रूप में प्रतिष्ठित हुई है।

- वाह ! राजमाता वाह ! किसने कहा कि नारी अबला है। वह तो महाशक्ति का भण्डार और महादुर्गा का अवतार है। यह विजय तेरी नहीं अपितु वासना पर उपासना की और ममता पर समता की विजय है।
- एक तरफ बुझ रहा सुहाग का जीवन-दीप और दूसरी तरफ शील- सुरक्षा का यक्ष प्रश्न ! दोनों संकटों से घिरी महारानी मृगावती चिन्तित अवश्य थी पर उसे अपने कर्तव्यों का पूरा बोध था।

पवित्रता की गंगोत्री

महासती मृगावती

महासती मृगावती

वह भी एक समय था, जब दसों दिशाओं में चण्डप्रद्योत की शक्ति, प्रभुता और पराक्रम की कीर्तिपताकाएँ लहराती थी। चण्डप्रद्योत की भुजाओं में छिपा था क्षात्रबल! आंखों में तैरता था कला का संगीत! खुद भी खूब जानकार! संगीतज्ञ! उसकी सभा में देश-विदेश से कलाकार आते और कला का बखूबी प्रदर्शन करते। राजा का सम्मान उन्हें सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा के उजागर की दिशा में गति देता।

एक दिन एक चित्रकार की चित्रकला से पूरी सभा हतप्रभ बन गयी। मुँह बोलते चित्र...प्राकृतिक सुषमा की अनुपमेय अनुकृति। एक-एक चित्र के साथ प्रद्योत के मुँह से मात्र वाह! वाह! शब्द ही निकल रहा था। यकायक एक चित्र ने उनके चित्त को जैसे बांध दिया। चित्र की सजीवता जितनी प्रशंसनीय थी, उतना ही आकर्षक था उसका अप्रतिम सौन्दर्य।

चण्डप्रद्योत के मुख से स्वयमेव शब्द निसृत हो चले-चित्रकार! तुम्हारी चित्रकला अनूठी है। पर यह जो चित्र देख रहा हूँ, वह तुम्हारी कमनीय कल्पना का अंग है या वास्तविकता का अंकन!

महाराज! यह कोरी कल्पना नहीं बल्कि इस धरा के सौन्दर्य, कला और चातुर्य का यथार्थ चित्रण है। इसमें सन्देह को स्थान नहीं।

चित्रकार! तुम्हारे कला-कौशल का भी जवाब नहीं। इसके सौन्दर्य में पवित्रता है, नयनों में पद्म-पुष्प सी सुवास है। चेहरे से नितरती हुई ज्योत्सना से इसका आभामण्डल इतना शीतल-निर्मल हो गया है कि सारी उपमाएँ इसके सम्मुख फीकी हो गयी हैं। यह कोई देवांगना है या....

महाराज! आप यह न भूले कि यह धरा रत्नों की खान है। आप जैसे कला-प्रिय भूनाथ से यह सौन्दर्य निधान आज तक छिपा रहा, यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

तो क्या यह दिव्य-चित्र इस धरती पर सदेह अपनी दिलकश अदाओं से स्वर्गलोक की अप्सरा को भी लज्जित कर रहा है?

हाँ! महाराज! मेरा कथन सर्वथा यथार्थता से अभिप्रेरित है।

चण्डप्रद्योत के नयन विस्मय से भर गये। उन्होंने प्रश्नों की जैसे झड़ी लगा दी-यह देवी कौन है? कहाँ रहती है? उसका प्रणय हो चुका है अथवा नहीं? चित्रकार अपनी लक्ष्य-साधना के प्रथम चरण को पार कर चुका था। उसने प्रत्युत्तर न देकर प्रद्योत की उत्कंठा को ज्यादा उत्तेजित करते हुए कहा-महाराज! नाम, स्थान और परिचय को प्राप्त करके भी आप क्या कर लेंगे। इस महंगे मोती को प्राप्त करना आपके बस की बात नहीं।

मृगावती के सौन्दर्य पर चण्डप्रद्योत की आश्यर्चमुग्धता

चण्डप्रद्योत तनिक क्रुद्ध होते हुए बोले-चित्रकार! अपनी जुबान को लगाम दो। तुमने मेरा कला-प्रेम देखा है पर मेरी शक्तियों का अभी तुम्हें अनुमान नहीं है। मैं जो चाहता हूँ, वह पाकर ही रहता हूँ।

करबद्ध हो चित्रकार बोला–क्षमा करे महाराज! मैं आपके प्रचण्ड पराक्रम को तोल नहीं पाया।

चण्डप्रद्योत का चित्त तन्त्र एक मात्र चित्र के आकर्षण में बंधा हुआ था। किसी भी प्रकार का विलम्ब उनके लिये असह्य था।

चित्रकार! तूंने जिस चाँद को चित्र का आकार दिया है, क्या उसके दिव्यदर्शन से तेरे नयन धन्य हो गये हैं?

महाराज! मेरा इतना सौभाग्य कहाँ कि इस अनुपम रुप–राशि को अपने नेत्रों में समाविष्ट कर सकूँ।

चण्डप्रद्योत के आश्चर्य का किनारा न रहा। तूंने इस महान् सौन्दर्य–सम्पदा का दर्शन किये बिना ही चित्रांकन कर लिया, यह तो चकित करने वाला संवाद है।

महाराज! मुझे देव–कृपा से यह वरदान प्राप्त है कि किसी व्यक्ति के केवल एक अंग–उपांग को देखकर मैं उसका हूबहू चित्र अंकित कर सकता हूँ।

अंगुष्ठ दर्शन से चित्र-निर्माण

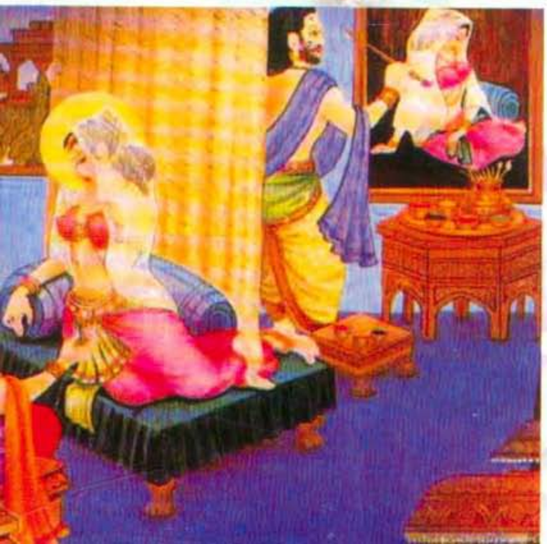

वाह भाई वाह! प्रशंसा करते हुए प्रद्योत बोले–यह तो विश्व का महान् आश्चर्य हुआ। निश्चित ही तुम इस धरती के गौरव हो। तुम्हारी बुद्धि, अंगुलियाँ और तुलिकाएँ अभिनंदनीय हैं।

क्या कहूँ महाराज! यह वरदान मेरे लिये अभिशाप बन गया है। आप नहीं जानते कि इसने मुझे कैसे–कैसे दिन नहीं दिखाये। भगवान करें, यह कला मुझे कभी न मिले। कहते–कहते चित्रकार का कण्ठ अवरूद्ध–सा हो गया। उसके नयनों में छलकते अश्रु–बिन्दु चण्डप्रद्योत से छिपे न रहे।

अपनी उत्सुकता को स्वर देते हुए प्रद्योत बोले–हे कलाकृति के महान् जादूगर! तेरी कला ने मेरे हृदय को बांध लिया है। गहरी आत्मीयता वश

तुम्हारे प्रति सान्त्वना से मेरा मन भर आया है। क्या तुम बता सकते हो कि भाग्य का यह सर्वोत्कृष्ट वरदान भला अभिशाप कैसे बन गया?

आँसू पौंछता हुआ कलाकार बोला-राजन् ! अद्भुत सौन्दर्य की जिस देवी का चित्र आपके समक्ष प्रस्तुत है, वह कोई और नहीं, कौशाम्बी नरेश शतानीक की महारानी मृगावती है। और महाराज! इसे आप आत्म-श्लाघा न समझे। जिस अनुपम लावण्य को मैंने अपनी कला के द्वारा चित्र में उभारा है, उसका आधार एकमात्र अंगुष्ठ-दर्शन है।

चण्डप्रद्योत विस्मित हुए बिना न रहे। कलाकार तेरी कला का सानी कहाँ? पर मैं तो अत्यन्त अचरज में पड़ गया हूँ कि महारानी के एक अंगूठे को देखकर तुमने पूरा चित्र उकेर डाला।

हाँ महाराज! यही से मेरी कला मेरे जीवन का जंजाल बन गयी। इसने मेरी शान्ति का सरेआम कत्ल कर दिया।

वह कैसे? सोत्सुक महाराज बोले।

महीपते! घटनाक्रम का सम्बन्ध कौशाम्बी से है। एक बार शतानीक ने चित्रशाला बनाने के लिये विश्व के कलाकारों को आमन्त्रित किया। अल्पावधि में ही कला के अनेक जादूगर कौशाम्बी नरेश की चित्रशाला में आ पहुँचे।

राजन्! मुझे लगा कि यह स्वर्णिम अवसर अपनी दिव्य कला साधना को प्रकट करने का ही नहीं अपितु प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्त करके गौरवान्वित होने का भी है। अपने काल्पनिक चित्र को उकेरने में मैंने अपनी सम्पूर्ण प्राणशक्ति ही नहीं, कला-प्रतिभा को भी संयोजित कर दिया।

एक दिन ऐसा हुआ राजन्! मैं राजसभा की ओर जा रहा था कि अकस्मात् मेरी नजर गवाक्षस्थ महारानी मृगावती के दाएँ पाँव के अंगुष्ठ पर पड़ी। मैंने उसी दिन से महारानी का चित्र उकेरना शुरू कर दिया।

दो पल दीर्घ श्वासोच्छ्वास की गति को संतुलित करने के लिये रूककर चित्रकार ने आगे का घटनाक्रम पुनः

कहना शुरू किया-महाराज! चित्र अब जब पूरा बन चुका था, तब अन्तिम क्षणों में मेरी तूलिका गिरी और महारानी की जंघा पर एक काला चिह्न अंकित कर गयी।

चित्र की जीवन्तता और सौम्यता में मुझे यह कृष्ण चिह्न इष्ट नहीं था। मैंने उसे मिटाने का पुनः पुनः यत्न किया पर नहीं मिटा। मैं समझ गया कि अवश्य ही महारानी की जंघा पर इस प्रकार का चिह्न है इसीलिये यह दैवी-कला उसे आबेहूब चिह्नित कर रही है।

शील और सौन्दर्य की जीवन्तमूर्तिः महासती मृगावती

मैंने विचार किया कि कल वस्त्राभूषणों से जब इस चित्र को विभूषित करूँगा तब यह चिह्न आवृत्त हो जायेगा पर राजन्! यह जरूरी नहीं कि हमारा सोचा हुआ करना हमारे हाथ हो ही। कर्म-विधाता को कुछ ओर ही मंजूर था। मेरा सोचा हुआ धरा का धरा रह गया और अगले दिन प्रातः ही नृपाधिप शतानीक चित्रशाला का अवलोकन करने पधारे।

मुँह बोलते चित्रों को निहारकर वे आनंद और आश्चर्य से भर गये। कलाकारों और कलाकृतियों की प्रशंसा करके वे लौट ही रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि महारानी मृगावती के चित्र पर पड़ी। यद्यपि चित्र अभी अपूर्ण था पर उसकी सजीवता इतनी गजब की थी कि वे वहीं ठिठक गये। उन्होंने प्रश्न किया-अरे! इतना जीवन्त चित्र बनाने वाला कलाकार कौन है?

मैं करबद्ध उनके सामने उपस्थित था। मैंने विनयावनत हो कहा-राजन्! इस चित्र को उकेरने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

वाह ! इतनी सजीवता....इतना आकर्षण ! इसे देखकर कोई भी न कह सकेगा कि यह चित्र है। महारानी स्वयं जैसे इसमें प्रतिष्ठित हो गयी है। वास्तव में तेरी प्रतिभा का कोई जवाब नहीं। अनुत्तर है तुम्हारा चित्र-उकेरने का कौशल्य।

सम्राट शतानीक द्वारा चित्रकार का अपमान

शताधिक कलाकारों के बीच इस प्रशस्ति को सुनकर मैं प्रसन्नता से भर गया। संकोच से मैं पानी-पानी हुआ जा रहा था कि भाग्य देवता ने करवट बदली।

राजा की नजर ज्योंहि जंघा पर बने तिलाकार चिह्न पर पड़ी त्योंहि उनका रूख बदला। आँखों से जैसे चिंगारियाँ बरसने लगी। उन्हें मुझ पर शक हो गया कि मैंने

महारानी के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया है, अन्यथा मुझ कलाकार को इस गुप्त तिलाकार चिह्न का पता कैसे चलता। आवेश में भरकर उन्होंने मृत्युदण्ड सुना दिया।

मैं अनुनय से भरकर कहने लगा-राजन्! आप जैसा सोच रहे हैं, वह पाप मैंने स्वप्न में भी नहीं किया। मुझे ऐसा दैवी-वरदान प्राप्त है कि जिससे किसी के एक अंग को देखकर मैं उसकी सम्पूर्ण दैहिक सौन्दर्य सम्पदा चित्र में उकेर सकता हूँ।

संदिग्धदृष्टि से भरकर क्रुद्ध हो उठे-नराधम! राजा से झूठ बोलने में भी तुझे संकोच और भय कहाँ है? उन्होंने सभी के बीच मुझ पर पता नहीं, कितने अपशब्दों की बरसात करते हुए जलील किया पर मैं सब कुछ उफ् तक किये बिना चुपचाप सुनता रहा।

अन्त में मैं एक बात पर ही डटा रहा-राजन्! आपको यदि मेरे कथन पर विश्वास नहीं है तो आजमा कर देख लीजिये क्योंकि मैं कलंक माथे पर मढकर नहीं मरना चाहता। मेरा कथन असंदिग्ध रूप से प्रमाणित हो जाने के बाद भी यदि शूली पर चढ़ना पड़ा तो भी मुझे कोई परवाह नहीं होगी।

मेरे अकम्प आत्मविश्वास को देखकर राजा का क्रोध तनिक शान्त हुआ और उन्हें विवेक भरी सोच मिली।

मेरे वरदान का इम्तिहान हुआ और मैं कसौटी पर खरा उतरा। पर राजन्! मेरी विजय शतानीक के लिये एक तरह से बुरी पराजय थी। वह उनके लिये असह्य हो गयी। अंततः मेरे परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर भी बहाना बनाते हुए कहा-इस तरह एक चित्र बनाने से तुम निर्दोष भले ही ठहरते हो परन्तु महारानी के गुप्त चिन्ह को अंकित करने का अक्षम्य अपराध तो किया ही है, अतः तुम्हें कृत अपराध का भुगतान मृत्यु-दण्ड के रूप में तो करना ही होगा।

पूरे घटनाक्रम को सूक्ष्मता से देखते हुए मंत्रीश्वर बोले-राजन् ! एक बार अपने निर्णय पर आपको पुनः विचार करना चाहिये। कहीं बाद में पछतावा न करना पड़े।

संम्राट् शतानीक की विवेक-बुद्धि सर्वथा भ्रष्ट नहीं हुई थी। दीर्घ दृष्टि से चिन्तन कर उन्होंने मृत्युदण्ड स्थगित कर दिया पर गुप्त चिन्ह को अंकित करना अक्षम्य अपराध मानकर मेरे दाएँ हाथ का अंगुष्ठ कटवा दिया, इतना ही नहीं, मुझे तिरस्कार करके देश-निकाला दे दिया। कहते हुए कलाकार की आँखों से अश्रुधारा बह चली।

चण्डप्रद्योत मृगावती के सौन्दर्य में कामान्ध पहले ही बन चुका था, कलाकार की आप बीती कहानी सुनकर क्रोधान्ध भी बन गया। उन्होंने दिलासा देते हुए कहा-कलाकार! तुम धैर्य धरो। तेरी दैवी कला का अपमान करने वाले शतानीक को अपने अपराध का दुष्फल भुगतना ही होगा।

चित्रकार जिस लक्ष्य को लेकर आया था, उस कार्य की अचिन्त्य सफलता से वह भावविभोर हो गया। मृगावती का चित्र राजा को भेंट स्वरूप देकर वहाँ से अविलम्ब गन्तव्य की ओर चल पड़ा।

अब तो चण्डप्रद्योत की चेतना पर एक मात्र मृगावती ही छायी हुई थी। उसने सबसे पहले अपने दूत वज्रजंघ के हाथों शतानीक के नाम एक संदेश भेजा-राजन्! आप बखूबी जानते हैं कि हंसिनी हँस के साथ ही शोभित होती है, बगुले के साथ नहीं। मुझे महान् आश्चर्य है कि मेरे अन्तःपुर में रखने योग्य मृगावती जैसी चन्द्रमुखी आपको कैसे हस्तगत हो गयी? महाराज चण्डप्रद्योत की आज्ञा है कि शीघ्र ही इस चाँद के टुकड़े को मुझे समर्पित करें अन्यथा खून की नदियाँ बहाने में उज्जयिनी की सेना पीछे नहीं हटेगी।

शतानीक का खून खौल उठा-कौशाम्बी की महारानी के लिये इस प्रकार का सन्देश शतानीक के लिये सर्वथा असह्य था। क्रोध में दहाड़ते हुए शतानीक बोले-धिक्कार है इस चण्डप्रद्योत को। परनारी पर इस प्रकार कुदृष्टि डालते हुए उसे जरा भी ग्लानि का अनुभव नहीं हुआ?

दूत अवध्य होता है। अन्यथा यहाँ से तूं नहीं, तेरी लाश ही जाती। जा! उस नराधम से कह देना कि महारानी के रूप में मोहित होने से पहले एक बार अपनी जिंदगी का विचार कर लेता तो अच्छा होता। कहीं ऐसा न हो कि परवाने

की तरह जीवन से हाथ धोना पड़ जाय। अच्छा यही होगा कि स्वयं की सुरक्षा के लिये वह कौशाम्बी नरेश से शीघ्र क्षमायाचना करें और भविष्य में ऐसी कुचेष्टा न करने के प्रति वचनबद्ध हो।

अपमानजनक शब्दावली सुनकर दूत मन ही मन कुपित तो बहुत हुआ पर कुछ भी कह न सका। प्रतिशोध की ज्वाला में धधकता हुआ उज्जयिनी पहुँचा और थोड़ा बहुत मिर्च-मसाला लगाकर सारी बात कह डाली।

अवमानना से रूष्ट हो चण्डप्रद्योत ने कामान्धता में कौशाम्बी के विरूद्ध युद्ध का शंखनाद कर दिया। दोनों की सेनाएँ समर-क्षेत्र में डट गयी। तलवारें चमक उठी, भुजाएँ फड़क उठी। उज्जयिनी की अपेक्षा कौशाम्बी की सेना छोटी थी पर उनका मनोबल मजबूत था। अपनी स्वामिनी की रक्षा में अपने प्राणों का उत्सर्ग जैसे उनके लिये जीवन का गौरव था।

एक-एक करके कौशाम्बी के वीर बलिदान की वेदी पर चढ़ने लगे। उज्जयिनी की विशाल सेना के बढते उत्साह ने कौशाम्बी के मेरूदण्ड को तोड़ डाला। उनकी जीत सुनिश्चित हो गयी। इस स्थिति को शतानीक झेल नहीं पाये और भयंकर अतिसार से ग्रस्त हो गये।

शतानीक को बोध देती रानी मृगावती

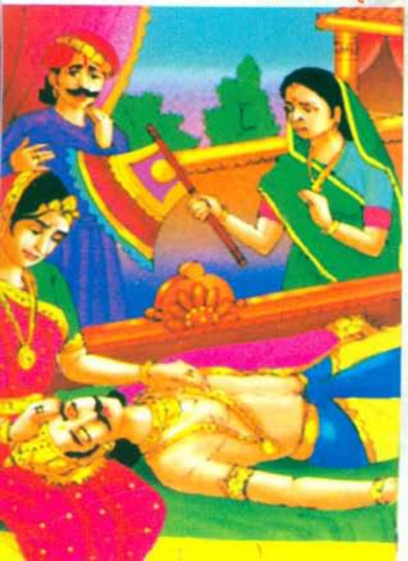

एक तरफ बुझ रहा सुहाग का जीवन-दीप और दूसरी तरफ शील-सम्पदा की सुरक्षा का प्रश्न! दोनों संकटों से घिरी महारानी मृगावती चिन्तित अवश्य थी पर उसे अपने कर्त्तव्य का पूरा बोध था। उसने धर्मपत्नी का फर्ज अदा करते हुए कहा-प्राणनाथ! मुझे आपके चिरविरह का जितना दु:ख है, उससे कहीं ज्यादा आपके परभव की चिन्ता है। इस समय आप किसी प्रकार की असमाधि और दुर्विचारों को स्थान न दे। हमारे दुश्मन चण्डप्रद्योत नहीं, राग और द्वेष हैं। पूर्व भव में हमने चण्डप्रद्योत की आत्मा को दु:खी किया होगा, उसी का फल आज मिल रहा है, अत: वह तो निमित्त मात्र है और निमित्त के प्रति राग-द्वेष नहीं

सम्राट शतानीक की अन्तिम यात्रा

किया जाता।

राजन् ! मेरा तो कहना है कि समत्व, आत्म-संयम और अनुप्रेक्षा के द्वारा पूर्वकृत पापों की निंदा व गर्हा करके अपनी आत्मा को उर्ध्वगति की दिशा में अग्रसर करें। रही मेरे शील की बात तो इस सन्दर्भ में आप पूरी तरह निश्िंचत रहे। शील मुझे प्राणों से प्यारा है, अतः उसकी सुरक्षा ही मेरा श्वसन तंत्र और प्राण-शक्ति है। यह सुनकर शतानीक की चेतना को गहरी शान्ति मिली और कुछ ही पलों में उन्होंने सदा के लिये आँखें मूंद ली।

वे क्षण मृगावती के लिए सर्वाधिक वेदना से भरे थे। एक तरफ पति का महाप्रयाण, दूसरी ओर राज्य में गहराता संकट और ऊपर से शील-संरक्षण का यक्ष प्रश्न ! पर मृगावती ने धर्म-कर्म की व्याख्या पढ़ी ही नहीं थी अपितु उसके अनुरूप जीवन-ढाँचे का भी निर्माण किया था, अतः महासंकट की इन घड़ियों में भी उसकी विवेक चेतना कुण्ठित नहीं हुई।

वह जानती थी कि चण्डप्रद्योत मेरे रूप में कामान्ध बना है अतः वह सबसे पहले यहीं आयेगा और साथ चलने के लिये आग्रह ही नहीं करेगा प्रत्युत अपहरण करने में भी नहीं हिचकिचाएगा। आत्म-समर्पण उसे स्वीकार्य नहीं था तो प्रतिरोध करना यानि पराजय को आमन्त्रित करने जैसा था। प्राण-उत्सर्ग करके क्षात्र-धर्म को लज्जित करना भी मृगावती ने सीखा नहीं था। एक तरह से यह संकटकाल उसकी प्रज्ञा, बुद्धि और विवेक को कसौटी पर कस रहा था। इन दुःखद क्षणों का सामना कैसे करना, यह मृगावती ने मन ही मन तय करके उसका प्रारूप महामंत्री के सम्मुख रख

दिया।

इधर कौशाम्बी नरेश का अवसान उज्जयिनी के विजय की घोषणा कर चुका था। यद्यपि प्रथम चरण की सफलता ने प्रद्योत को अतिरिक्त आनंद से भर दिया तथापि जब तक दूसरे चरण की सफलता का स्पर्श न करें, तब तक यह सब अपूर्ण ही था।

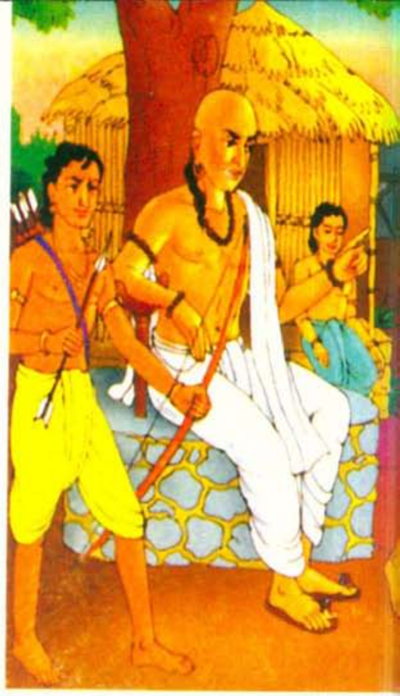

उसने दूसरे ही दिन अपनी कुत्सित भावनाओं को शब्दांकित कर मृगावती के नाम पत्र प्रेषित किया। मृगावती एक शील सम्पन्न सन्नारी! प्रद्योत की गंदी शब्दावली को पढ़कर जैसे उसके रोम-रोम में आग लग गयी पर क्रोध को जाहिर करना निश्चित ही राज्य एवं शील सम्पदा के लिये खतरे की घण्टी थी।

कुशाग्र प्रतिभा का उपयोग करते हुए मृगावती ने प्रद्योत को सन्देश भिजवाया-उज्जयिनी के परम प्रतापी महाराज ! आपका मेरे प्रति जो अगाध प्रेम और हृदय का समर्पण है, वह मेरे लिए आल्हाद का विषय है। मैं आपकी इच्छा का सम्मान करती हूँ परन्तु राजन् ! मेरे सम्मुख राज्य की सुरक्षा व उदायन के राज्याभिषेक के दायित्व अवशिष्ट हैं, जिनसे मुँह मोड़ना अपने आप में अनुचित ही कहा जायेगा। दुर्ग की सुदृढ़ता का कार्य भी करना है। यदि आपका सहयोग प्राप्त होगा तो सारे कार्य शीघ्र सम्पन्न हो जायेंगे। इस तरफ छह माह का राजकीय शोक घोषित किया गया है। अतः मेरा निवेदन है कि उक्त काल पर्यंत आप धैर्य रखें। मृगावती....!

राजकुमार उदायन को कला-प्रशिक्षण

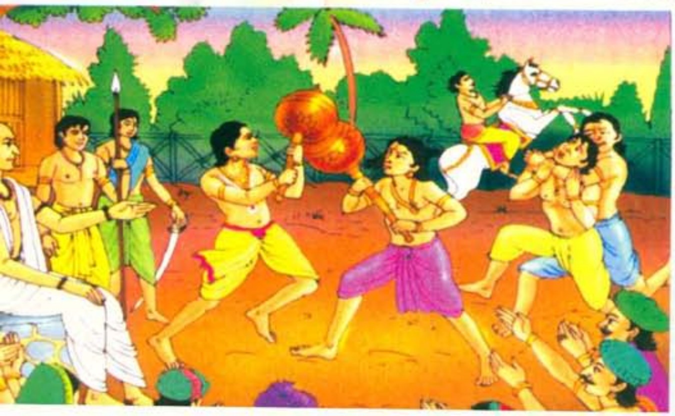

जो कार्य अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रहा था, उसका हल

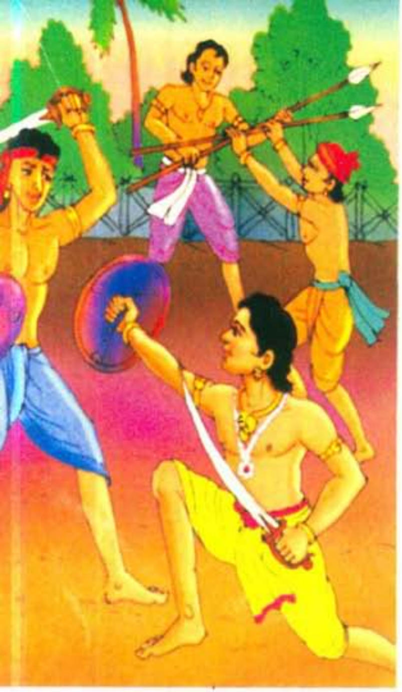

इतनी आसानी से निकल आयेगा, इसका चण्डप्रद्योत को अनुमान कहाँ था! उसकी आँखें आश्चर्य से फटी की फटी रह गयी। यद्यपि उसके प्राण मृगावती के विरह में तड़फ उठे थे पर अन्य कोई रास्ता भी तो न था। अब तक वह मृगावती के सौन्दर्य पर कायल था पर आज उसकी सूक्ष्म दृष्टि और सूझबूझ पर फिदा हो गया था। कुशल कूटनीतिज्ञ होने पर भी चण्डप्रद्योत आखिर मात खा गया।

कौशाम्बी की ओर चण्डप्रद्योत का ससैन्य प्रस्थान

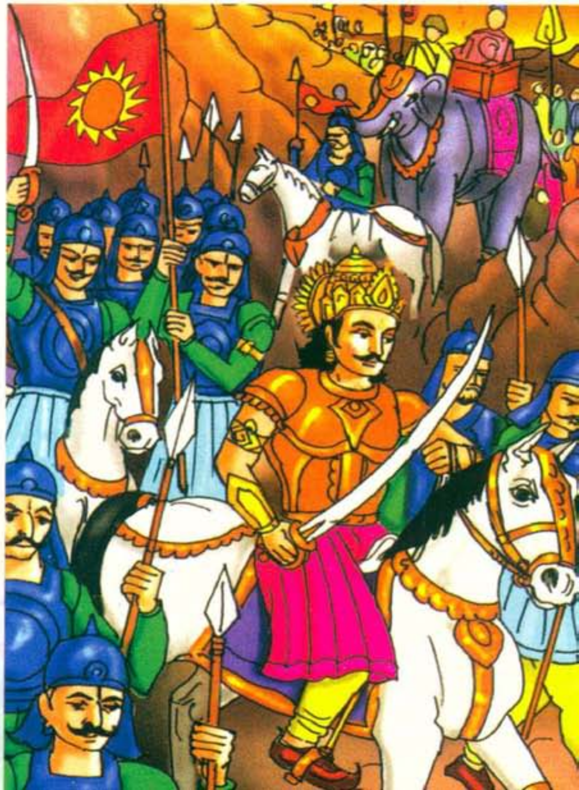

आत्म एवं राज्य सुरक्षार्थ मृगावती के लिये यह छह माह की अवधि अपने आप में पर्याप्त थी। इस अवधि में उसने उदायन को विविध शस्त्र कलाओं में पारंगत किया और कौशाम्बी के राजपद पर अभिषिक्त कर दिया, दूसरी और राजा-प्रजा, धन-धान्य की सुरक्षा के लिये राज्य की प्राचीर को सुदृढ़ कर दिया। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में चण्डप्रद्योत के लिये एक-एक पल एक-एक युग बन गया। जब छह माह का समय परिपूर्ण हुआ, तब मिलन की मधुर कल्पनाओं में डूबकर उसने मृगावती को प्रीति-पत्र प्रेषित किया। पर उसका नकारात्मक और चुनौतीपूर्ण प्रत्युत्तर पाकर हक्का-बक्का रह गया। नराधम ! परस्त्री पर कुदृष्टि डालते हुए तुझे जरा भी संकोच नहीं हुआ। मैंने न तो तेरी चाह की है, न कभी कर सकती हूँ और मैंने जो छह माह का आश्वासन दिया था, वह केवल और केवल शील की सुरक्षा

का प्रबंध था।

लम्पट ! लगता है वासना की दीमक तेरी बुद्धि को चट कर गयी है। समर्पण की बात तो दूर, यदि तूंने मेरे शील के साथ खेलने की कोशिश की तो वही दुर्गति होनी है जो रावण की हुई थी। शील तो वह अग्नि है, जिसका खेल सब कुछ भस्मीभूत करके ही समाप्त होता है।

चण्डप्रद्योत के क्रोध ने रौद्र रूप ले लिया। मृगावती की चाह में मतिमन्द होकर उसने कौशाम्बी पर धावा बोल दिया पर उसका गर्व कुछ समय में ही चूर-चूर हो गया।

उदायन के कुशल नेतृत्व में सैनिकों के बढ़ते-चढ़ते जोश ने प्रद्योत को सकते में डाल दिया। किसी भी तरह मृगावती को पाने की आशा में उसने प्रजा में आतंक फैलाने का आदेश दे दिया पर वह सम्भव नहीं हो पाया क्योंकि प्रजा सुदृढ़ दुर्ग में सुरक्षित हो चुकी थी। स्वयं के द्वारा सुदृढ़ की गयी प्राचीर को भेदकर भीतर प्रविष्ट हो पाना नितान्त अशक्य था।

अन्ततोगत्वा प्रधानमंत्री ने स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए कहा- राजन् ! अब तो प्रत्यावर्तित होना ही समुचित है क्योंकि इस विकट स्थिति में हार ही हाथ लगनी है और धन-बल को दाँव पर लगाकर भी मृगावती को न पा सके तो बड़ी हँसी-मजाक हो जायेगी। चण्डप्रद्योत इस अबूझ पहेली को सुलझा नहीं पा रहा था।

इधर मृगावती इस बात को अच्छी तरह से जानती थी कि चण्डप्रद्योत का जो मेरे प्रति अनुराग है, वह केवल और केवल मेरे सौन्दर्य के कारण है। क्यों न मैं इस जंजाल की जड़ को ही उखाड़ डालूं। वह अनशन, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि से अपनी आत्मा को भावित करने लगी।

यद्यपि उसका दैहिक सौन्दर्य ढल रहा था पर आत्मकांति और तप की शिखा क्रमशः प्रदीप्त हो रही थी। शनैः शनैः उसकी चित्तवृत्ति उर्ध्वगामी होती हुई विरक्ति की ओर मुड़ रही थी। चेतना के अनादिकालीन कलुषित संस्कारों

का परिमार्जन करती हुई मृगावती वैराग्य के उस शिखर पर आरूढ़ हो गयी, जहाँ से उसका पतित होना अथवा प्रकम्पित होना सर्वथा अशक्य कार्य था।

उसके रोम-रोम में एक ही मंत्र का मनन था-यह युद्ध मुझे स्वीकार्य नहीं। हजारों हजारों निरपराध जीवों का रक्त बहाने में मुझे निमित्त नहीं बनना है।

वास्तव में यह संसार रहने योग्य नहीं। कहीं साढू ही साढू का घातक बन जाता है तो कहीं बहनोई साली के रूप पर मुग्ध होकर अपनी आत्मा को ही नहीं, कुल और परम्परा को भी कलंकित कर बैठता है। जहाँ स्वजन ही इस तरह स्वार्थ में अन्धे होकर अपनों पर कहर बरपाते हैं, उस संत्रस्त संसार में भला त्राता कौन? कौन है उसका कल्याण मित्र, निःस्वार्थ स्नेही और सच्चा आसरा।

इन्हीं परम पावन अध्यवसायों में डूबकी लगाती-लगाती मृगावती भावधारा की ऊँचाइयों को प्राप्त कर संकल्पबद्ध बन गयी-यदि परमात्मा महावीर इस धरा पर पधार जाये तो मैं इस नश्वर जगत् को छोड़कर शाश्वत सुख की दुनिया में प्रविष्ट हो जाऊँ। उसके हृदय के श्रद्धा मिश्रित संकल्प ने महाश्रमण की भावनाओं को कम्पित किया, तार से तार जुड़े और परमात्मा महावीर के पावन चरण कौशाम्बी की धरा पर पड़े।

मृगावती के आनंद का छोर न रहा। वह जानती थी कि आकांक्षाओं का आत्यन्तिक क्षय हुए बिना इस युद्ध का अन्त नहीं हो सकता। पुनः पुनः वासनाओं की तरंगें मनुष्य को उन्मत्त बनाती रहेगी। वह इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थी कि जब साँप-नेवला, सिंह-बकरी भी अर्हत् महावीर के दिव्य आभावलय में आकर शान्त हो जाते हैं तो प्रभु सानिध्य में चण्डप्रद्योत अवश्य ही विवेक-चक्षु को प्राप्त कर जायेगा।

मृगावती के आदेश को प्राप्त कर दुर्भेद्य दुर्ग के द्वार उद्घाटित हो गये। महाराजा उदायन और मंत्रीमण्डल के साथ वह चल पड़ी महाश्रमण महावीर के समवसरण की शरण में। यद्यपि चण्डप्रद्योत का मन मृगावती में रमा हुआ था। पर

वह महाश्रमण का परम भक्त था। उसने इस स्वर्णिम अवसर को हाथ से जाने नहीं दिया और परमात्मा महावीर के अवग्रह में आ पहुँचा।

मृगावती ने ईशान कोण में श्राविकाओं की पर्षदा में स्थान ग्रहण किया। चण्डप्रद्योत भी बद्धांजलि होकर अपनी मर्यादा में उपस्थित हुआ।

आप्त वाणी क्या थी, दुःख से त्रस्त आत्मा का विश्राम स्थल। 'नमो तित्थस्स' पूर्वक महाश्रमण की देशना का शुभ आरंभ हुआ-जब तक जीव संबोधि को उपलब्ध नहीं हो जाता, तब तक यूं ही संसार चक्र में पिसता रहता है। संबोधि वह शक्ति है, जो जीव को शाश्वत समाधि की ओर ले जाती है। अर्हत् प्रभु से भला चण्डप्रद्योत की अनधिकार चेष्टा कहाँ छिपी थी। उन्होंने सामयिक प्रज्ञा का प्रयोग करते हुए कहा-जो

परमात्मा महावीर का अलौकिक समवसरण

व्यक्ति दूसरों की झोंपड़ी को भस्मीभूत करके स्वयं के महल को सजाना चाहते हैं, वे अबोध जीव हैं। दूसरों पर कीचड़ उछालने वाले के हाथ भला कैसे स्वच्छ रह सकते हैं?

महाप्रज्ञ महावीर की उज्ज्वल प्रज्ञा ने चण्डप्रद्योत की चेतना को झकझोर कर रख दिया।

अरे! मैं कितना अधम! यह कदम मुझे ही नहीं, सम्पूर्ण कुल को लज्जित करने वाला है । प्रभु का पावन संस्पर्श पाकर भी मैं विकृति की इस ज्वाला में कैसे झुलस गया ? उसे पता नहीं चला और उसकी आँखों से अनुताप की अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। विकार से संस्कार में प्रविष्ट हो गया प्रद्योत!

उसी समय मृगावती ने प्रभु के उपपात में खड़ी होकर निवेदन किया-महाप्रभो ! आपका सामीप्य मुझे काम्य है। मेरे मन में तो क्या, मेरे एक रोम में भी संसार की कोई याचना नहीं है। कृपानिधान ! मुझे अपने संघ में सम्मिलित करने का अनुग्रह करें।

प्रभु की धीर गम्भीर वचनावली प्रकटी- 'मा पडिबन्धं कुणह।' प्रव्रजित होने में विलम्ब न करें।

मृगावती की दीक्षा

मृगावती ने सानुनय कहा-प्रभो! मैं तत्पर हूँ आपके चरण-चिह्नों का अनुसरण करने के लिये। पर मेरे सम्मुख एक समस्या है। महाराज उदायन लघुवयी है, रणनीति और न्यायनीति के क्षेत्र में पूर्णतया परिपक्व नहीं होने से इन्हें अभी भी संरक्षण की अपेक्षा है अत: मैं चाहती हूँ कि महाराज चण्डप्रद्योत, जो उनके मौसा हैं, वे यदि उदायन के संरक्षण-संवर्द्धन का दायित्व स्वीकार कर ले तो मेरा नि:श्रेयस का पंथ तो निष्कंटक होगा ही, साथ ही

साथ इनके पितृ कर्त्तव्य और वात्सल्य को प्राप्त कर सम्पूर्ण कौशाम्बी उपकृत बनेगी।

चण्डप्रद्योत की आँखें जैसे पलकें झपकाना ही भूल गयी। मृगावती की विलक्षण धृति और वीर-वृत्ति के प्रति वह पहले से प्रणत था पर युद्ध का इस तरह रहस्यमय ढंग से अन्त होगा, यह तो उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

अपने अकृत्य का पश्चात्ताप तो था ही, पर अब प्रायश्चित्त का अवसर भी उसके सामने था। उसने मृगावती के व्यक्तित्व में प्रशंसा के मोती जड़ते हुए कहा-प्रभो ! मृगावती एक नारी नहीं अपितु समय का एक अमिट हस्ताक्षर है। उसने अटूट साहस, अकंप विश्वास और अप्रतिम कौशल से शील-धन की सुरक्षा का जो बीड़ा उठाकर पूर्ण किया, वह अभिनन्दनीय ही नहीं, संपूर्ण मानवजाति के लिये प्रेरणा का प्रदीप भी है ।

श्लाघनीय और प्रशंस्य है संबोधि के ये पुण्य पल। उसकी अन्तर्यात्रा में सहभागी बनने का गौरव कुछ अनूठा ही होता, पर संसार में डूबे मुझ भोगी के लिये यह सहज कहाँ? मृगावती इस सन्दर्भ में सम्पूर्ण आश्वस्त रहे कि महाराज उदायन को मैं पितृवत् स्नेह दूंगा। उसके संरक्षण में कहीं कोई प्रवंचना नहीं होगी। आप शीघ्र ही मृगावती पर अनुकम्पा कर उसके महान् संकल्प को सफल करें। कहते हुए प्रद्योत के नेत्र सजल हो गये।

मृगावती प्रद्योत के अनुग्रह के प्रति नत-प्रणत हो गयी। अपनी कूटनीति के प्रति क्षमायाचना करके कपट की गांठों को खोल दिया। तत्काल महाराज उदायन की अनुज्ञापूर्वक महावीर के पथ की वीरांगना बन गयी। हजारों हजारों नयन आश्चर्य मिश्रित आनंद से भर गये। प्रद्योत की उद्दण्ड वासना को अत्यन्त माधुर्य और चातुर्य से परिमार्जित करने वाली मृगावती की प्रशंसा में जैसे निःशब्द भाव सुमन प्रसारित हो गये-वाह ! राजमाता ! किसने कहा कि नारी अबला है। वह तो महाशक्ति का भण्डार और महादुर्गा का अवतार है। यह विजय तेरी नहीं, अपितु वासना पर उपासना की और ममता पर समता की विजय है।

दशों दिशाओं से जैसे आशीर्वाद बरसने लगा-हे महापथ की अनुगामिनी राजमाते मृगावती ! तेरी साधना का यह

परमात्मा वर्धमान की देशना में उपस्थित साक्षात् सूर्य-चन्द्र देव

क्रम तब तक प्रवर्धमान रहे, तब तक तेरे कदम न रूके जब तक कि चरम सिद्धि तेरे चरणों का स्पर्श न कर ले। वर्धमान भव ! प्रवर्धमान भव ! प्रगतिमान भव !

प्रव्रज्या के साथ राजमाता मृगावती भिक्षुणी बन गयी और श्रमणीप्रमुखा चन्दनबाला के मार्गदर्शन में अन्तर्दर्शन की यात्रा में गतिशील हो गयी।

विनयशील व्यवहार !

चारित्र के प्रति अखण्ड निष्ठा !

वेयावच्च में अद्‌भुत उत्साह ।

अल्पावधि में ही वह सम्पूर्ण श्रमणी वर्ग के प्रेम और अनुग्रह की पात्र बन गयी। वह चारित्र निष्ठा के कारण शैक्ष और बाल श्रमणियों की आदर्श बन गयी। महाश्रमण के अनुपमेय सान्निध्य में तीन-चार घटिका पर्यन्त बैठकर स्थिरता, चारित्र-निष्ठा और अप्रमाद के सूत्रों का स्वाध्याय करना उसका नित्यक्रम बन गया।

आत्म-साधना का पथ दुर्गम है। इस दुष्कर साधना के पथ का यदि कोई अवरोधक है तो वह है-प्रमाद! यह दुर्गुण शिखरारूढ़ चौदह पूर्वधरों को भी निगोद की खाई में इस तरह पटक देता है कि उससे उबरने की प्रकाश-किरण असंख्य-अनन्त भवों तक भी नजर नहीं आ पाती।

यद्यपि मृगावती संयम के प्रति अत्यन्त जागरूक और आत्मार्थी साध्वी थी पर एक बार प्रमाद ने उस पर भी आक्रमण कर लिया।

समवसरण में वह वर्धमान प्रभु की पर्युपासना में उपस्थित थी। गणधर गौतम स्वामी के प्रश्न और महाश्रमण के समाधान सूत्रों में ऐसा तादात्म्य बना कि वह समय का भान ही भूला बैठी।

सूर्यास्त यद्यपि हो चुका था पर सूर्य तथा चन्द्र देव अपने मूल विमान के साथ परमात्मा की अभिवन्दना हेतु उनके सान्निध्य में उपस्थित थे। अत: उनके प्रकाश में यह बोध होना असम्भव ही था कि सूर्य ढल चुका है।

मृगावती परमात्मा की समुपासना में यह भी सोच नहीं पायी कि ऐसा दिव्य प्रकाश ढल रही सांझ के समय कैसे हो सकता है ? सूर्य व चन्द्र देव प्रभु चरणों की पावन रज अपने माथे पर लगाकर जब लौट गये तो अंधकार सा छा गया तब उसे अकस्मात् ध्यान हो गया कि सूर्यास्त हुए दो घटिकाएँ व्यतीत हो चुकी है ।

एक साध्वी, और सूर्यास्त के बाद प्रभु के चरणों में स्थित। संकोच और शर्मीन्दगी से मृगावती सिमट गयी। वह संकुचाती हुई तुरन्त अपने स्थान से उठ खड़ी हुई और अपनी वसति की ओर चल पड़ी।

इधर साध्वी प्रमुखा चन्दनबाला की आँखें मृगावती को खोज रही थी।

मृगावती संयमप्रिय, अनुशासित और गुर्वाज्ञा में रमण करने वाली साध्वी थी। सम्पूर्ण साध्वी मंडल में उसकी गहरी पेठ और आदर्श छाप थी। उसका दृष्टिगत न होना चन्दनबाला के लिये किसी आश्चर्य से कम न था क्योंकि वह कहीं भी जाती तो पृच्छना समाचारी का समुचित परिपालन करती थी।

प्रतिक्रमण की पूर्णता के बाद भी मृगावती नजर नहीं आयी तो चन्दनबाला के विचार-तन्तु तेजी से झंकृत हो उठे।

सहवर्ती अन्य साध्वियों से पूछा भी पर मृगावती का पता न चला। मन में विचारों के झंझावात चलने लगे कि अचानक उसकी दृष्टि मुख्य द्वार पर पड़ी तो पाया कि कोई व्यक्ति आ रहा है।

चन्द्रमा की मन्द चाँदनी में यह अनुमान लगाना सम्भव नहीं हो पाया कि आगन्तुक कौन है। पर जैसे-जैसे वह निकट आ रहा था, त्यों त्यों उसकी छवि स्पष्ट हो रही थी। कुछ पलों में यह अत्यन्त स्पष्ट हो गया कि आगन्तुक साध्वी मृगावती ही है।

सांसारिक सम्बन्धों की अपेक्षा से मृगावती साध्वी प्रमुखा की मौसी लगती थी पर साधना के क्षेत्र में इन बातों का विशेष मूल्यांकन नहीं हो सकता। वहाँ भाई-भतीजावाद अथवा अन्य किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होता।

चन्दनबाला समर्पित साधिका ही नहीं, निपुण प्रशासिका भी थी। सम्बन्धों की किसी भी प्रकार की परवाह किये बिना टोकते हुए उसने कहा-मृगावती! अब तक तुम कहाँ थी?

क्षमा करें भगवती ! आगे जैसे उससे कुछ भी कहते ही नहीं बना।

बताती क्यों नहीं! इस प्रकार विलम्ब से आने का क्या कारण है?

जी....जी...! कहते हुए मृगावती के होंठ ही जैसे चिपक गये।

चन्दनबाला का आश्चर्य गहरा हो गया। चन्द्रमा की चाँदनी में वह स्पष्टतया यह जान पायी थी कि सदाबहार की तरह हमेशा खिली-खिली और प्रफुल्लित रहने वाली मृगावती संकुचित, भयभीत और म्लान नजर आ रही है। उसने मनोवैज्ञानिक ढंग से समझाते हुए कहा-देखो मृगावती! प्रमादवश कभी भी किसी से भी स्खलना हो जाती है। इसलिये घबराओ मत। जो कुछ भी घटित हुआ है, उसे प्रस्तुत करो।

चन्दनबाला का आश्वासन प्राप्त कर मृगावती का भय थोड़ा कम हुआ पर उसके मुख से एक भी बोल फूट नहीं रहा था। चन्दनबाला ने पुनः संप्रेरित करते हुए कहा-देखो, प्रमाद के वशीभूत होकर व्यक्ति अकार्य कर बैठता है पर उसे जो स्वीकार कर लेता है, वह पाप और अपराध से मुक्त हो जाता है।

यदि तुम अपने अकरणीय को गुप्त रखना चाहोगी तो निश्चित ही यह पाप का शल्य तुम्हें कहीं भी शान्ति और समाधि से जीने नहीं देगा। निश्चित ही यह अन्तर्शल्य तुम्हारी सद्गति में भी अवरोधक बनेगा, अतः निष्कपट होकर जो भी असामान्य प्रसंग बना है, उसे प्रकट करो।

यद्यपि मृगावती के हृदय में पाप को छिपाने की स्वल्प भी इच्छा नहीं थी तथापि तीव्र पश्चात्ताप के कारण यह कार्य दुष्कर हुआ जा रहा था।

साध्वीप्रमुखा की पुनः पुनः संप्रेरणा पाकर मृगावती ने कहने का साहस जुटाया-प्रवर्त्तिनी महोदया! समय का ख्याल नहीं रहा। मैं प्रभु की पर्युपासना में उपस्थित थी। मुझे सूर्यास्त होने का भान नहीं रहा अतः आने में देरी हो गयी। मृगावती ने अत्यन्त विनम्र भाव से उत्तर दिया।

तुम्हारा यह उत्तर मुझे तो बिल्कुल भी उचित नहीं लग रहा है कि तुम्हें सूर्यास्त का ध्यान नहीं रह पाया। तुम कोई बालसाध्वी तो नहीं कि इस छोटी-सी बात का भी बोध न हो पाये। चन्दनबाला ने प्रतिप्रश्न किया।

मृगावती पूर्णतया सहज थी-साध्वीप्रमुखे! आपका कथन बिल्कुल सही है पर मैं जो कह रही हूँ, उसमें कहीं कोई प्रपंच अथवा छलना नहीं है।

अब चन्दनबाला और ज्यादा गम्भीर हो गयी।

मृगावती ने आगे अपना वक्तव्य जारी रखते हुए कहा-महाश्रमणी महोदये! मैं परमात्मा के उपपात में उपस्थित थी। श्रमण भगवंत के सम्मुख जिज्ञासु मुद्रा में सहज विनयावनत होकर श्रमण श्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहे थे। परमात्मा के मुखारविंद से समाधान के पुष्प बिखर रहे थे।

मैं मंत्रमुग्ध होकर उस संवाद की धारा में आकंठ डूब चुकी थी। प्रवर्त्तिनीप्रवरे ! मैंने देखा कि चन्द्र तथा सूर्य, दोनों देव अपने विमानों के साथ प्रभु चरण-अभिवन्दना के लिये करबद्ध हो आ पहुँचे थे। उनकी उपस्थिति में मुझे इस बात का तनिक भी भान नहीं रहा कि सूर्यास्त हो चुका है। बस ! यहीं मुझसे अपराध हो गया।

चन्दनबाला ने मृगावती से पूछा-वह तो ठीक है। पर तुझे सूर्यास्त होने का बोध कैसे हुआ?

सतीशिरोमणे! देव प्रभु-वाणी में भीगे वहाँ करबद्ध हो बैठे रहे पर आखिर अतिथि की तरह आये थे, अत: उन्हें लौटना तो था ही। दो घटिका के बाद जब वे प्रत्यावर्तित हुए तब उनके साथ जैसे प्रकाश भी प्रत्यावर्तित हो गया। चिहुँदिशि अंधकार था। मैं ग्लानि और संकोच से सिमट गयी। तुरन्त खड़ी हुई। विचारों के तूफान और रात्रि के अंधेरे, दोनों को चीरती हुई आपकी कृपा से यहाँ लौट पायी।

चन्दनबाला ने संयम का निर्देश देते हुए कहा-मृगावती! मैं जान चुकी हूँ कि यह अपराध तुमने जानबूझकर नहीं किया तथापि इसका प्रायश्चित अनिवार्य है । रात्रि में मुनि-प्रवास पर रहना लोकापवाद व निन्दा कारण है। तुम चारित्र सम्पन्न एवं अप्रमत्त साध्वी हो । यदि इस प्रकार मूर्च्छित एवं प्रमत्त होकर विचरण करोगी तो शैक्ष एवं नूतन साध्वियों पर इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा।

मुझे क्षमा करें श्रमणीप्रमुखे! मैं आपको भरोसा दिलाती हूँ कि गलती का पुनरावर्तन किसी भी कीमत पर नहीं होगा। कहते-कहते मृगावती गुरुमाता के चरणों में सिर रखकर अश्रुधारा से प्रक्षाल करने लगी। चन्दनबाला के वात्सल्य भरे हाथों का सुखद संस्पर्श पाकर मृगावती का हृदय थोड़ा आश्वस्त हुआ।

संस्तारक का समय हो चुका था। चन्दनबाला एवं समस्त साध्वियाँ कुछ क्षणों में ही निद्राधीन हो गयी थी पर मृगावती पुन: पुन: अपराध का प्रतिक्रमण कर रही थी।

पश्चात्ताप की उजली राहों में भला निद्रा के अंधेरे को स्थान कैसे मिलता?

वह गुरुमाता के पाँव दबाती हुई मन ही मन अपने प्रमाद के लिये क्षमायाचना कर रही थी पर साध्वीप्रमुखा का कडा उपालंभ सुनकर तो जैसे उसका रोम-रोम अपराध-बोध से व्यथित हो चला था। संयम पर्याय के लम्बे काल में आज मुझसे भूल कैसे हो गयी? यह तो उपकार गुरुमाता का, जिन्होंने मुझे सचेत किया।

मैं कितनी अपराधिनी कि मेरे कारण उन्हें उपालंभ देना पड़ा। हाय! मैं उनकी असमाधि में निमित्त बन गयी।

सोचते सोचते अनुताप व्यथा बनकर आँखों के द्वार से अभिव्यक्त हो रहा था। कभी पश्चात्ताप की गंगा तो कभी कृतज्ञता की चिन्तन-धारा! कभी प्रमाद की पीड़ा तो कभी अपुनरावृत्ति का पावन संकल्प!

पवित्र भावों की विविध धाराएँ जैसे एकाकार-एकरसीभूत होकर घनी हो गयी थी। मृगावती इन धाराओं में ऐसे डूबने लगी कि भव-भवान्तरों की कर्म-परतें उखड़ने लगी। उस एक रौ में ऐसी बह चली कि देखते देखते कुछ क्षणों में ही उस तट पर उपस्थित हो गयी, जहाँ संयम-साधना पूर्णरूपेण कृत-कृत्य हो जाती है। केवलज्ञान के मुकुट से उसकी आत्मा दैदीप्यमान हो उठी।

अनुत्तर ज्ञान के अलौकिक आलोक में उसे एक सर्प नजर आया, जो चन्दनबाला के हाथ की ओर बढ़ रहा था। मृगावती तुरन्त अपने कर्त्तव्य के प्रति उन्मुख हुई और उठकर गुरुमाता के हाथ को धीरे से उठाकर सांप के मार्ग को निराबाध कर दिया परंतु रात्रि में कर स्पर्श से चन्दनबाला जागृत हो बैठ गयी। उसने पूछा-क्या बात है? तुम अभी तक सोयी नहीं ? अभी तक पाँव दबा रही हो? मेरा हाथ क्यों हटाया ?

मृगावती बोली-जी सर्प....!

कहाँ है सर्प? चारों तरफ गौर से देखने लगी पर स्याह अंधेरे में सांप कैसे नजर आता? उसने कहा-मृगावती ! तुमने सपने में सांप देखा होगा अन्यथा इस श्याम अंधेरे में श्याम सर्प कैसे नजर आ सकता है?

मृगावती परम शान्त और गंभीर थी। उसने कहा-आपकी कृपा से ही मुझे नजर आया है।

अरे मृगावती! जब इस काजल जैसे गहन श्यामल अंधकार में कुछ भी नजर नहीं आ रहा, तब तुझे सर्प नजर आ गया? क्या बात है? तुझे कोई अनुत्तर ज्ञान हुआ है ?

हाँ गुरुमाते ! यह सब आपकी असीम कृपा का ही परिणाम है।

सुनकर जैसे चन्दनबाला चौंकी! क्या तुम्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है?

हाँ भगवती !

तो क्या केवलज्ञान हो गया है?

हाँ जी! आपके वात्सल्य भरे आत्मानुशासन ने मेरी कषाय की सारी ग्रन्थियों को समूल उखाड़ डाला। आप की सन्निधि के बिना यह सब कहाँ संभव था! आपकी अनुकम्पा मेरे जीवन की नूतन उजली-मखमली भोर बन गयी।

चन्दनबाला का हृदय आनंद के फूलों से खिल उठा। बधाई हो तुम्हें! तुमने अपना अभीष्ट साध लिया।

मृगावती बोली-बधाई मुझे नहीं, आपकी निर्भय, आत्मानुशासन से अभिप्रेरित अनुपम सारणा, वारणा, चोलना व प्रतिचोलना को है। क्षपक श्रेणी में आरूढ़ होने में वही तो मुख्य सहभागी बनी है।

चन्दनबाला की आत्मा जाग उठी। अरे! मैंने यह क्या किया? एक केवलज्ञानी की ही नहीं, केवलज्ञान की भी आशातना कर डाली। मैंने ज्ञानी

से सेवा करवाकर ज्ञान एवं ज्ञानी का अविनय किया है। छत्तीस हजार साध्वियों की प्रमुखा होकर मैं भी ऐसा अवांछनीय व्यवहार कैसे कर बैठी? इसका पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त तो मुझे करना ही होगा अन्यथा मेरी आत्मा का निस्तार असम्भव है। देखते देखते उसकी आँखें अनुताप के अश्रुओं से छलक उठी।

साध्वी चन्दनबाला प्रायश्चित्त की निर्मल धारा में डूबी तो ऐसी डूबी कि मोह और अज्ञान के असीम दुर्लंघ्य सागर को तिर गयी। कुछ पलों का आत्मशोधन जीवन का दिव्य संशोधन बन गया। उसकी चेतना का हर अणु केवलज्ञान के प्रकाश में नहा गया।

यह भव चन्दनबाला और मृगावती की अनन्त यात्रा का अन्तिम पड़ाव बन गया। आयुष्य कर्म की परिसमाप्ति पर्यन्त वह श्रमणी समुदाय का व्यवस्थित व अनुशासित संचालन करती हुई परम-चरम उद्देश्य को उपलब्ध हो गयी।

- राजन् ! शत्रु को जीतना है तो प्रेम और क्षमा ही एक मात्र उपाय है। कदम आगे बढ़ाईये और कारा के द्वार खोलकर क्षमादान की आर्हती परम्परा को नया आयाम दीजिये ।

- तत्क्षण अन्तरिक्ष में एक चिर-परिचित शब्दावली गूंजी-स्वामिन् ! आपको प्रतिबुद्ध करने के लिये ही ये सारी संयोजना थी। अपना दत्त वचन पूर्ण कर आज मैं निर्भार हो गयी ।

प्रकृष्ट पुण्यशालिनी

महासती प्रभावती

महासती प्रभावती

पूरे नगर में....हर घर में हाहाकार मचा हुआ है। लोग जान बचाने के लिये इधर से उधर भाग रहे हैं पर अग्नि की महाज्वालाओं ने जैसे दावानल का रूप धारण कर लिया है।

पूरा वीतभयपत्तन नगर सर्वनाश के शिखर पर खड़ा दुःख और त्राहिमाम् की अगणित पुकारों से चीख पड़ा है पर कोई नहीं है....कहीं नहीं है उसका त्राता....संकटमोचक।

महाग्नि के महामुख में लोग प्रवेश करते जा रहे हैं। स्वजन-परिजन किसे बचाये....कैसे बचाये ! स्वयं के प्राण भी महासंकट में पड़ गये हैं।

न कोई दिलासा देने वाला है, न बचाने वाला। लाचारगी और बेचारगी से संत्रस्त है हर प्राणी....हर व्यक्ति।

प्रजापति शुभंकर द्वारा धर्मोपदेश श्रवण

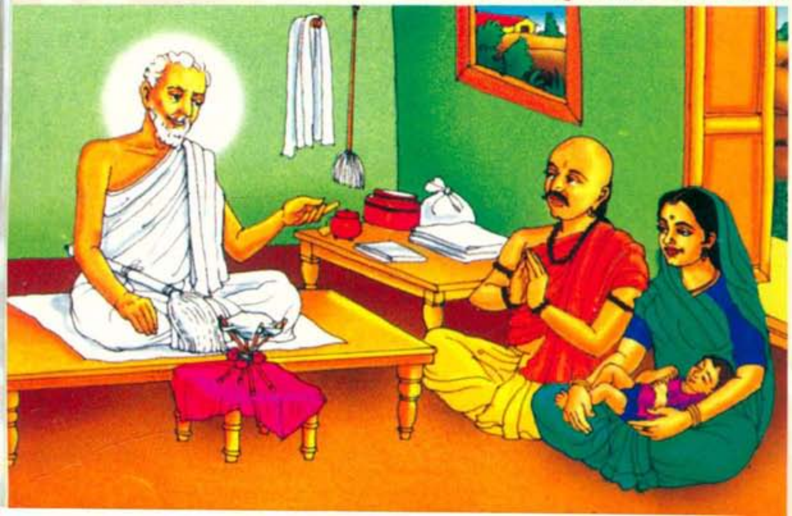

गली....घर....महल....झोंपड़ी को लीलती हुई ज्वालामुखी बाहर की ओर बढ़ चली है। शहर के बाह्य भाग में ही झोंपड़ी में रहता है प्रजापति शुभंकर।

आकाश में उठती महाज्वालाएँ....धुएँ की गंध.... झुलसती पृथ्वी और रोती प्रकृति को देख उसकी आँखें आँसुओं से नम हो गयी हैं। वह चौकन्नी निगाहों से देख रहा था काली नागिन की तरह बढ़ती हुई उस अग्नि-शिखा को। उसकी आशाओं का एवं जीवन का दीप एक तरह से बुझने के कगार पर है पर वह आग

उसकी गृह-परिधि में प्रवेश करे, उससे पहले ही जैसे एक अपूर्व घटना ने जन्म लिया है।

उन विकराल लपटों ने दिशा को बदल दिया है। श्वासों का बुझता चिराग फिर से जल उठा है। संकट का अकल्पित रुप से सिमटना उसके लिये आश्चर्य का विषय बन गया है, तभी उसे अपनी झोंपड़ी में ठहरे मुनि की स्मृति हो आयी है। वह सपत्नीक दौड़ा है मुनिवर के कक्ष की ओर, और वहाँ देखा है उनका निष्प्राण कायिक वैभव। उसका दर्द अब कई गुणा ज्यादा बढ़ गया है । शरीर का नीलाभ वर्ण देख वह मरण का रहस्य समझ गया है।

राजा केशीकुमार के प्रति उसका हृदय थूं थूं करने लगा है। धिक्कार है ऐसे राजा को, जिन्होंने मुनीन्द्र उदायन के आगमन की खबर सुनी और पडह बजवा दिया कि इसे कोई भी स्थान न दे। केशी सम्राट् को संदेह था कि यह पुनः राज्य हड़पने के लिये आया है। राजर्षि उदायन हर चौखट को नाप आये पर किसी ने भी स्थान नहीं दिया। राजाज्ञा की अवहेलना करने की हिम्मत भला किसकी होती! अन्ततोगत्वा मुनिवर पहुँच गये हैं शुभंकर की दहलीज पर।

छोटी-सी झोंपड़ी है उसकी। वह भी नगर के बाहर। 'धर्मलाभ' की ध्वनि यकायक उसके कर्णपटल से आ टकरायी है। उसने बाहर पहुँचकर देखा है कि हमारे नगर के अधिपति राजर्षि उदायन याचक की मुद्रा में सहजतया उपस्थित हैं। महाराजा को महर्षि के रूप में देख उसका रोम-रोम आनंद की अमी से उछलने लगा है।

पधारो भगवन् ! इस दासानुदास की सविनय वंदनावलि स्वीकार करो।

वत्स! वसति की गवैषणा के लिए आया हूँ। क्या ठहरने के लिये स्थान उपलब्ध हो सकेगा?

दोपहर की तपती धूप....नंगे पाँवों तले उष्ण धरातल....मोती की तरह चमकती पसीने की बूंदें।

अरे मुनीश्वर! आप धूप और ताप में कहाँ खड़े हैं। पधारिये! पधारिये! आपका हार्दिक अभिनंदन है। आपके पावन आगमन से मेरा गृहाँगन धन्य हो गया है।

यद्यपि वह जानता था कि राजकीय निषेधाज्ञा होने से स्थान देना संभावित खतरे से खाली नहीं है तथापि मानवीय

संवेदनाओं से उसका हृदय श्रद्धार्द्र हुए बिना नहीं रहा।

राजा केशी को शुंभकर के द्वारा मुनि को स्थान देना तनिक भी अच्छा नहीं लगा पर लोकापवाद के कारण प्रतिक्रिया नहीं कर पाया। वह येन केन प्रकारेण मुनि को खत्म करना चाहता था पर सीधे-सीधे बन्दी बनाकर मृत्यु दण्ड देने में अपयश और कृतघ्नता का अभिशाप था। राज-लोभ में डूबा वह दिन-रात एक ही विचार में था-सांप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। संयोग ही समझिये कि प्रतिदिन रूक्ष, नीरस आहार करते-करते मुनीन्द्र रोगाक्रान्त हो गये। स्वास्थ्य-लाभ के लिये राज-वैद्यों की चिकित्सा का सहारा लिया! और यही पर केशी कुमार को अपने दुष्ट मन को क्रियान्वित करने का अवसर मिल गया। नृपति के आदेशानुसार राजवैद्यों ने विषमिश्रित औषधि का पान करवाया। जहर आखिर जहर है। उसने अपना दुष्प्रभाव दिखाया और कुछ पलों में मुनि ने समाधिपूर्वक प्राण त्याग दिये।

उनकी नीलाभ काया....नसों का खिंचाव....बाहर निकली आँखें....मुँह से निकलते झाग।

दम्पत्ति की आँखों से आँसू बह चले। वास्तव में लोभ का भूत व्यक्ति को यहाँ तक कृतघ्नी एवं स्वार्थी बना देता है कि वह उपकारी की जीवन-लीला समाप्त करने में भी तनिक हिचकिचाता नहीं है।

ओह ! नृशंस नृपति के घृणित अत्याचार का जन-बल भले ही विरोध न कर पाया पर प्रकृति भला कैसे इस महापाप को झेल पाती। उसने इतना विकराल रूप धारण किया कि पूरा वीतभयपत्तन नगर विनाश के कगार पर खड़ा हो गया। निर्दयी राजा के निर्मम क्रूर कारनामे को मूक भाव से देखने वाली जनमेदिनी भी प्रकृति के प्रतिशोध से बच न सकी। दम्पति ने व्यथित मन से मुनीन्द्र की अन्त्येष्टि सम्पन्न की और देखते-देखते उनका सारा जीवन चलचित्र की भाँति आँखों के आगे उतरने लगा।

ओह....! इन महाप्रतापी महाराज उदायन का पुण्य वैभव कितना प्रकृष्ट और उत्कृष्ट था। सिन्धु सौवीर के सोलह राज्यों पर उनकी एकछत्र अनुशासना चलती थी।

सम्पत्ति और समृद्धि के उत्तुंग शिखर पर बैठे उदायन की विभा में चार चाँद पूरने वाली महारानी प्रभावती न

केवल सौन्दर्य और लावण्य से ओत-प्रोत थी, अपितु उससे भी बढ़कर उसके पास संस्कार, शील और साधना की अनुत्तर सम्पन्नता थी। कुल, बल और संस्कारों से सम्पन्न दम्पति जैसे एक-दूसरे के पूरक ही नहीं, प्रेरक भी थे। प्रभावती ने जन्म-घुट्टी में संस्कारों की शिक्षा भी प्राप्त की थी, इसी कारण वैभव के महासागर के मध्य भी वह पद्म-पत्र की भाँति निर्लिप्त थी।

रूप और राज्य का दर्प उसे कभी भी छू नहीं पाया। उसके आदर्श और मार्ग-संवाहक थे अकिंचन निर्ग्रन्थ।

एक दिन संपूर्ण नगर में एक ही चर्चा की हवा बह चली। न जाने वह सौभाग्यशाली कौन होगा, जो इस बंद पावन पेटी को खोलेगा और भक्तजनों को परमात्मा के दर्शन करवाने का महापुण्य प्राप्त करेगा।

नाविक ने बताया कि इस विशिष्ट पेटी में परमात्मा की अद्भुत प्रतिमा है। इसका निर्माण परमात्मा के विचरण काल में ही हो गया था। ऐसी प्रतिमा जो आत्म-स्वरूप के दर्शन करा दे...ऐसी प्रतिमा जो उपशम रस....सुधा रस की भीगी-भीगी अमृतमयी सुगंध से मन-मानस को श्रद्धा-संवेग से आप्लावित कर दे।

संस्कार और सौन्दर्य की आकृतिः महासती प्रभावती

साधु-साध्वी आये....

सेठ-साहुकारों ने अपना भाग्य आजमाया.... श्रावक-श्राविका भी पंक्ति में खड़े हुए....राजा भी सोत्सुक हो हाजिर हुआ पर पेटी नहीं खुली तो नहीं खुली! दिन पर दिन बीतते गये... रातें गुजरती गयी... देशी-विदेशी-परदेशी, न जाने कितने ही पुण्यशालियों ने पेटी को खोलने का प्रयत्न किया...।

उन्होंने अधिष्ठायक देव-देवी का स्मरण किया...

पूजन-वंदन-अर्चन किया पर सब निष्फल....व्यर्थ.....अधूरा...!

वीतभयपत्तन के राजा उदायन के लिए यह चिन्ताजनक स्थिति थी!

दिन चिन्ता में व्यतीत होता...

रात इन्हीं सोचों में गुजरती...

राजकार्य हाथ में धरे रह जाते....

हे प्रभो! अब तो अपने अनुपम दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो! अब और परीक्षा मत लो! हमारा धीरज जवाब दे चुका है। अब आपके दर्शन बिना रहा नहीं जाता। दर्शन के वियोग का दर्द सहा नहीं जाता। उदायन राजा की पत्नी... शील और सदाचार की सुन्दर-सौम्य प्रतिमा महासती महारानी प्रभावती।

वह पहुँची उस बंद पेटी के समक्ष!

अरिहंत भगवंत का स्मरण किया। मन में नवकार को स्थापित किया। धूप, फल, नेवैद्य आदि समर्पित करके बोली-हे परमात्मन्! आपके पावनकारी दर्शन पाने की प्यास रोम-रोम में है। हे प्रभो! हमारी पुकार सुनो! हृदय आपके लिए तरस रहा है। तड़प उठी हैं संवेदनाएँ ! कीजिए कृपा! बरसाईये आशीष का अमी! करूणा निधान! एक बार तो दर्शन दीजिए! कहते-कहते प्रभावती की आँखों से अश्रुधारा बह चली!

तभी एक विस्फोट हुआ! मेघ बरसे! और देखते-देखते पेटी खुली! परमात्मा साक्षात् हुए!

देवों ने पंचवर्णी पुष्पों की बरसात की! दिव्य ध्वनि का गुंजारव हुआ।

यह सब शीलवती प्रभावती के सच्चारित्र और शील के महाबल का ही पुण्य प्रभाव था। राजा ने एक सुन्दर मंदिर बनवाकर उसमें परमात्मा को प्रतिष्ठित किया।

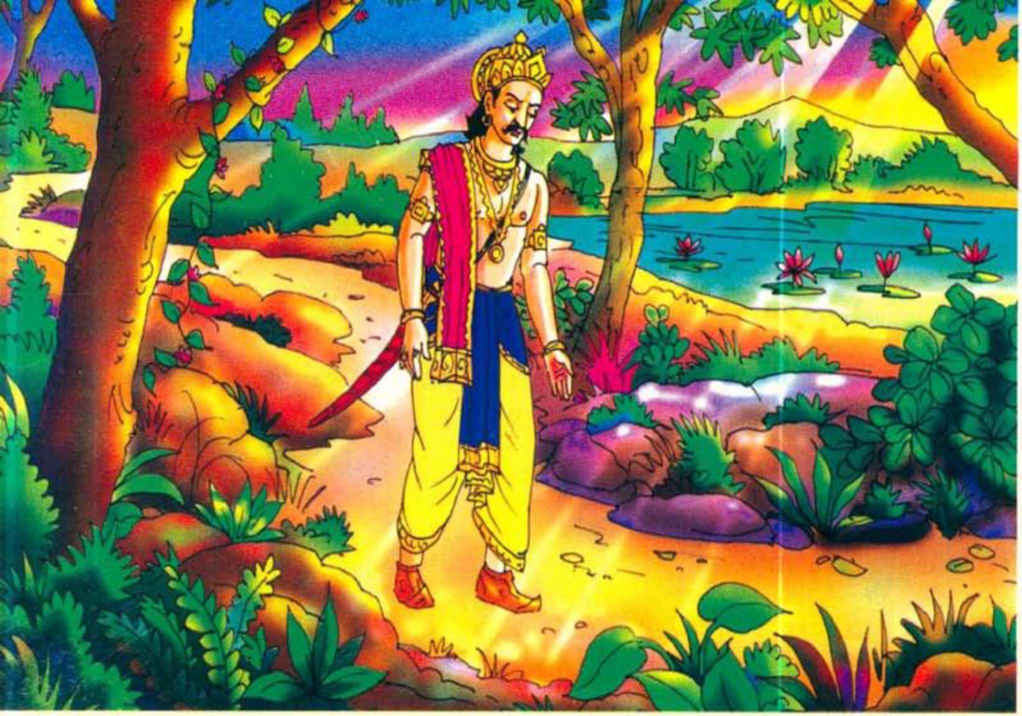

वन में एकाकी सम्राट् उदायन

जब-तब उसका चित्त-मण्डल इन भावों से छलकता रहता कि समस्त भोगोपभोग अन्ततोगत्वा क्षणिक, नश्वर और विध्वंस परिणामी हैं। वह पुण्य पल कब आयेगा, जब दीक्षित होकर मैं आत्म-कल्याण की साधिका बनूंगी। उसकी निर्मल परिणति के परमाणुओं ने प्रभु महावीर को आकृष्ट किया। उनके चरणों की पर्युपासना करते हुए उसका मन परम विरक्त दशा को उपलब्ध हो गया।

उसने अपना निवेदन महाराज उदायन के सम्मुख प्रस्तुत रखा। प्राण-प्रिया का पारमेश्वरी प्रव्रज्या का आवेदन सुन उदायन चकराये बिना न रहे। उन्होंने अनेक प्रश्न-प्रतिप्रश्न किये पर प्रभावती के अटल वैराग्य को परखकर दीक्षा की अनुमति देनी ही पड़ी।

यद्यपि उदायन राजा की तापसों के प्रति अनन्यभक्ति थी तथापि सर्वधर्म के प्रति कोमलता के कारण प्रभावती की भाव-धारा को मोड़ने का उपक्रम कभी नहीं किया था। इससे भी अधिक प्रभावती को संयम यात्रा का यात्री बनाकर अपनी उदार मानसिकता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया था।

पर उनकी शर्त थी कि तुम उचित समय पर मुझे प्रतिबोध अवश्य दोगी। इसमें प्रभावती को भला क्या आपत्ति हो सकती थी। स्वीकृति के साथ प्रवर्धमान उत्साह से वह वीर-पथ की अनुगामिनी बन गयी।

जप-तप की साधाना उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करती रही। वैराग्य की आंच में उसकी चेतना को नया निखार मिला। कषायों को मंद करती हुई वह समाधि मरण प्राप्त कर देवलोक में महर्द्धिक देव बनी।

अवधिज्ञान के द्वारा जब अपने पूर्व भव को जाना तो प्रदत्त वचन की पूर्णता के प्रति संकल्पबद्ध बन गयी और महाराज को प्रतिबुद्ध करने हेतु वह उचित काल की प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन महाराज उदायन हाथी पर सवार होकर वन-विहार के लिये निकले। साथ में कुछ सैनिक थे। यकायक वह हाथी उन्मत्त हो चिंघाड़ता हुआ इधर-उधर भागने लगा। कोई भी उसको वश करने में समर्थ नहीं था। राजा के प्राण जैसे कण्ठ में आकर अटक गये। जैसे-तैसे किसी वृक्ष की शाखा को पकड़कर वे अपने प्राण बचा पाये पर घने अरण्य में उदायन को कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था।

इधर-उधर भटकते-भटकते अब तो भूख के कारण प्राण छटपटाने लगे। जिस जंगल में किसी मनुष्य की उपस्थिति तो क्या, उसकी छाया की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वहाँ एक ब्राह्मण को अपने समक्ष पाकर उदायन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उस विप्र प्रवर ने कृपा की वर्षा करते हुए एक सुरभित फल राजा की हथेली पर रख दिया। भूखे और थके राजा उनके अनुग्रह के प्रति गद्‌गद्‌ हो गये। उस दिव्य माधुर्य से परिपूर्ण फल का रस चखा तो उनका हृदय अपूर्व तृप्ति से छलके बिना नहीं रहा।

प्रभावती द्वारा दत्त वचन की पूर्णता

महाराज उदायन ने जब उस अमृतोपम फल के बारे में जिज्ञासा अभिव्यक्त की तो ब्राह्मण रूप देव को प्रतिबोध देने का उचित अवसर मिल गया।

उसने कहा कि यहाँ से कुछ ही दूरी पर ईशान कोण में तापस-आश्रम है, वहीं से यह अनूठा फल प्राप्त हो सकेगा।

उदायन धन्यवाद ज्ञापित कर शीघ्र निर्दिष्ट आश्रम की दिशा में चल पड़े। जैसे ही आश्रम में प्रविष्ट होने लगे कि तापस चिल्लाने लगे-मारो....मारो....! लूट लो, काट लो इस बदमाश को। कहते हुए राजा को पकड़ने के लिये दौड़ने लगे। यकायक इस प्रकार का वातावरण देख उदायन घबराये, पाँव जैसे भूमि पर चिपक कर रह गये पर प्राण बचाने की चाह में पूरी ताकत लगाकर वे भागने लगे।

तीव्र गति से भाग रहे उदायन को पकड़ने में असमर्थ तापस पुनः लौट गये पर तापसों का इस प्रकार का दुर्व्यवहार एवं धृष्टता देखकर दु:खी हो गये। उनकी श्रद्धा की नींव को जबरदस्त झटका लगा।

थके-हारे वे एक वृक्ष की छाँव तले सुस्ताने के लिये रूके। कुछ पलों के बाद उनके कानों से जंगल के एक छोर से आ रही शब्द-लहरियाँ टकराने लगी। उन्हें लगा- जरूर इस दिशा में मानव-बस्ती होनी चाहिये। वे सधी चाल से उसी दिशा में चल पड़े। चलते-चलते उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ से मधुर स्वर-लहरियों का सुरीला संगीत प्रवाहित हो रहा था।

उदायन और चण्डप्रद्योत में मुकाबला

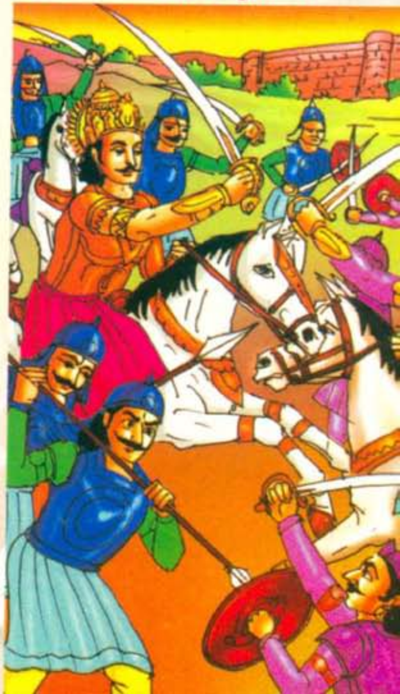

गाँव के बाहर उद्यानस्थ जैन मुनि प्रवचन फरमा रहे थे और जनसमूह एकाग्र होकर श्रवण कर रहा था। उन्हें तापस-आश्रम की याद हो आयी। अन्दर बढ़ते पाँव अनिष्ट की आशंका से बाहर ही रूक गये। वहीं खड़े-खड़े उदायन ज्ञानामृत का रसपान करने लगे।

सांसारिक भोगों की निस्सारता एवं मोक्ष-प्राप्ति के दिव्य पुरूषार्थ-प्रेरणा संयुक्त वचन सुनते हुए उनके पाँव कब अन्दर प्रवेश पा गये, उनको भी ख्याल नहीं रहा। उनका अन्त:करण निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति श्रद्धा से आप्लावित हो गया। इस ज्ञानालोक में वे स्पष्टतया जान चुके थे कि मेरी मंजिल कहाँ है और मैं कहाँ गोते लगाता रहा।

निर्ग्रन्थ धर्म स्वीकार कर उनकी धन्यता का पार न रहा। तापसों की क्रूरता और जैन मुनियों की करूणा, दोनों में जैसे आकाश-पाताल का अन्तर देखकर आश्चर्य से

उनका मन अभिभूत हो रहा था।

प्रवचन के उपरान्त उन्होंने विदाई ली। मुनियों की निस्संगता एवं निस्पृहता की स्मृतियाँ जैसे उनके साथ-साथ चल रही थी। अपने नयनों को तृप्त करने के लिये महाराज उदायन ने पीछे दृष्टि घुमायी पर वहाँ न तो मुनिगण था, न जनसमूह, न आश्रम। तत्क्षण अन्तरिक्ष में एक चिर-परिचित शब्दावली गूंजी-स्वामिन्! आपको प्रतिबुद्ध करने के लिये ही ये सारी संयोजना थी। अपना दत्तवचन पूर्ण कर मैं आज निर्भार हो गयी।

उदायन समझ गये, यह कुछ और नहीं, प्रभावती की ही देव माया का परिणाम है।

एक बार उदायन की स्वर्णगुलिका नामक दासी का अपहरण चण्डप्रद्योत ने करवा लिया। उदायन के लिये यह एक तरह से चुनौती ही थी। उसने शीघ्र ही अपने संदेशवाहकों के द्वारा दासी को ससम्मान लौटा देने का संदेश भेजा पर चण्डप्रद्योत ने स्पष्ट इन्कार कर दिया।

परिणाम अत्यन्त स्पष्ट था कि दोनों का सैन्य दल सुसज्जित हो गया। यद्यपि उदायन नहीं चाहते थे कि किसी प्रकार की प्राण हानि हो पर ईंट का जवाब पत्थर से देना जरूरी हो गया था। यदि इस अधम कृत्य का प्रतिकार नहीं किया गया तो इस प्रकार की दुष्ट हरकतों को प्रोत्साहन मिलते देरी नहीं लगेगी।

उदायन की जय और चण्डप्रद्योत की पराजय

उदायन ने अपने हय-गय-रथ समूह को विशेष रूप से प्रशिक्षित कर उज्जयिनी की ओर कूच किया। लम्बा मार्ग, भीष्म ग्रीष्म ऋतु का बढ़ता ताप और दूसरी ओर पेयजल का अभाव। सैनिकों का बड़ा समूह जल के अभाव में तरस-तरस कर मृत्यु के कराल गाल में समा गया। अवशिष्ट सैन्य दल के सम्मुख भी यही विकट संकट उपस्थित था। चिन्तातुर उदायन को कोई उपाय सुझ नहीं रहा था।

पुण्य का योग प्रबल था। चिन्ताजनक यह सारी स्थिति महर्द्धिक देव रूप में स्थित प्रभावती को ज्ञात हुई। उसने अपने कर्त्तव्य से उत्प्रेरित हो मार्ग में जलाशय की विकुर्वणा की। सूखे कण्ठ, प्यासी आँखों और बुझते प्राणों को जैसे अमृत कुम्भ मिला। अत्यन्त कष्टप्रद स्थिति में अर्द्धांगिनी प्रभावती के इस सद्‌भाव से उदायन की ही नहीं, हर व्यक्ति की चेतना में कृतज्ञता का सागर लहरा उठा।

अपने सैन्य दल-बल को पुनः व्यवस्थित कर उदायन उज्जयिनी की ओर बढ़े। बढ़ते-चढते पराक्रम के साथ अल्पावधि में ही चण्डप्रद्योत को बंदी बना लिया। विजय का शंखनाद करते हुए उन्होंने दासी को अपने अधिकार में लिया और वीतभयपत्तन नगर की ओर प्रयाण किया।

मध्यमार्ग में ही संवत्सरी महापर्व आ गया। आत्म-आराधना में निमग्न होते हुए उदायन ने उपवास की साधना की और संध्याकाल में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया। चौरासी लाख जीव योनियों में स्थित अनन्त

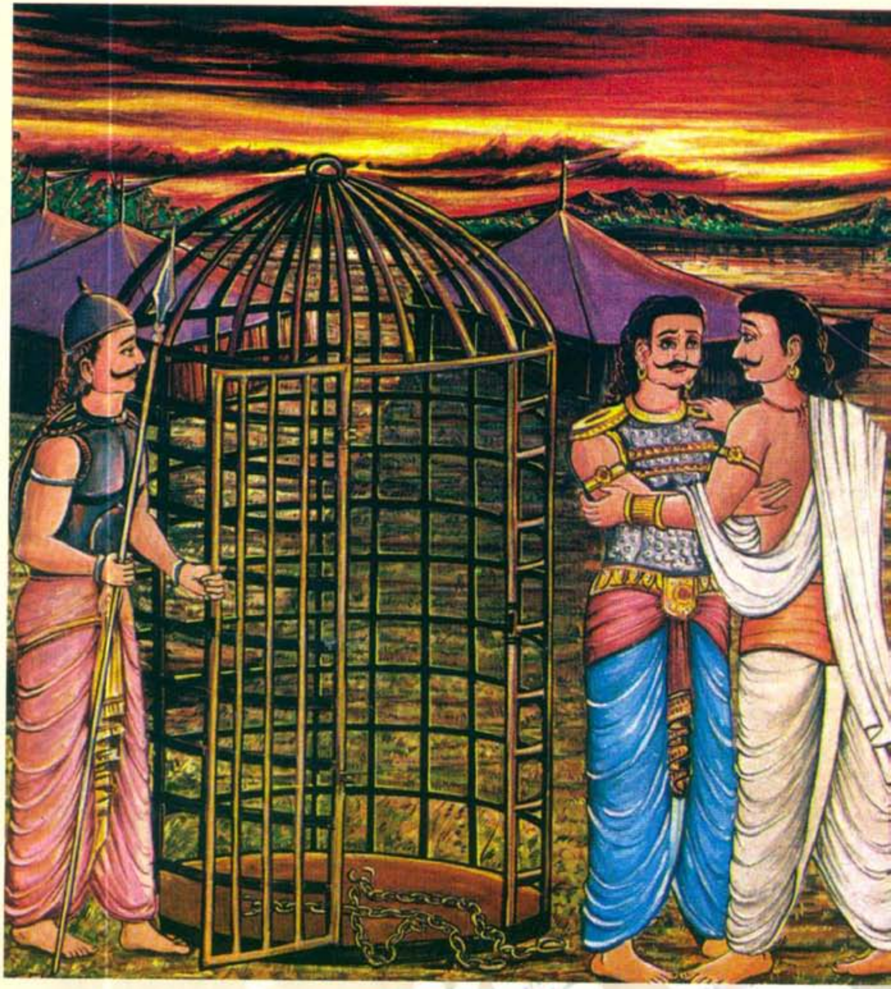

परस्पर क्षमापना का आनंद

जीवों को क्षमायाचना करते हुए उन्हें स्मरण हो आया-अरे! मुझे चण्डप्रद्योत से भी क्षमा का आदान-प्रदान करना चाहिये। यद्यपि वह मेरा अपराधी है तथापि मेरा धर्म कहता है कि मैं क्षमायाचना करके स्वकृत पापों का मिथ्या-दुष्कृत ज्ञापित करूँ। शीघ्र ही उनके कदम बढ चले चण्डप्रद्योत की दिशा में।

कारा में कैद चण्डप्रद्योत उदायन के मुख से क्षमायाचना की बात सुनकर झुंझला गये। उन्होंने तुरन्त कटाक्ष करते हुए कहा-राजन्! तुम्हारी क्षमा-याचना का नाटक भी अद्भुत है।

सुनकर उदायन के आश्चर्य का पार न रहा। उन्होंने पूछ भी लिया-वह कैसे?

राजन्! हाथ कंगन को आरसी की क्या जरूरत? दिन के उजाले की तरह मेरा कथन अत्यन्त स्पष्ट है कि एक तरफ शत्रु को बंदी भी बनाये रखना और ऊपर से हाथ जोड़कर माफी मांगना किसी नाटक से कम थोड़े ही है।

चण्डप्रद्योत के मर्मभेदी शब्द उदायन के मन को छू गये। आत्मा की साक्षी से उन्होंने अनुचित एवं अपराध की आलोचना की। आँखों में क्षमा के मोती छलक उठे। यद्यपि उनकी आत्मा में गहन पश्चात्ताप था, फिर भी किसी कोने में छिपा अहंकार और धिक्कार का भाव झुकने से रोक रहा था। अहंकार और क्षमा की द्विधा में उलझे उदायन के सम्मुख जैसे प्रभावती की छवि उतर आयी-राजन् ! शत्रु को जीतना है तो प्रेम ही एक मात्र उपाय है। अन्यथा शोध-प्रतिशोध की यह शृंखला कितनी लम्बी और कैसी दुर्गतिदायिनी होगी, कह पाना अशक्य है। कदम आंगे बढ़ाईये और कारा के द्वार खोल दीजिये। क्षमादान की आर्हती परम्परा को नये आयाम देकर आराधना को सफल कीजिये।

देखते-देखते उदायन आगे बढ़े और कारा के द्वार खोलकर चण्डप्रद्योत को सस्नेह अपने गले से लगा लिया। चण्डप्रद्योत को हारा हुआ राज्य पुनः मिल गया।

प्रभावती की अनुत्तर प्रेरणाएँ उदायन की मार्गदर्शिका बनती रही और अल्पकाल में राज्य को त्याग कर सम्राट् उदायन संयम-पथ पर प्रस्थान कर गये।

• कुन्ती उम्र से वृद्ध हैं पर संकल्प से युवा। ढलती उम्र में तेरह वर्षों के अनजाने कष्टप्रद सफर में प्रसन्न मन से चलना उसकी दृढ़ संकल्प संपूर्ति का पुष्ट-प्रकट प्रमाण है।

• उसने सुख में संयम और दुःख में समत्व को साधा है तभी तो इतिहास ने नारी जाति के स्वर्णिम पृष्ठों पर आदर्श, संकल्प और समर्पण की अनूठी कलम से उसका अमिट नामांकन किया है।

• पुत्री! अब न घबराना है, न धैर्य को खोना है। हमारे पास कोई अस्त्र-शस्त्र न हुआ तो क्या हुआ, धर्म की शरण तो है ही। चलो, हम उसकी शरण में चले। व्यक्ति हर द्वार से खाली....निराश लौट सकता है पर धर्म के दरबार से नहीं।

संकल्प की प्रतिमूर्ति

महासती कुन्ती

महासती कुन्ती

सूरज अपनी गति से प्रतीची की ओर हमेशा की तरह गतिमान है। उगना और ढलना उसकी शाश्वत नियति है।

सूरज की तरह पर्वतों, जंगलों, गाँवों को पार करते हुए कुछ यात्री बढ़ते चले जा रहे हैं। 'चरैवेति चरैवेति' का मंत्र जैसे इन्होंने जीवन में अपना लिया है।

इनका सुन्दर बदन....गंभीर चाल....मधुर भाषा....व्यवहार कुशलता देखकर लोगों का मन जिज्ञासा से भर जाता है। एक प्रश्न उनके हृदय को कुरेदने लगता है-ये लोग आचार, विचार और व्यवहार से किसी राजघराने से सम्बद्ध दिखते हैं अन्यथा रंग-ढंग, चाल-चलन, खान-पान, वेश-परिवेश से इतने शालिन, शिष्ट और विवेकी नहीं होते। इनकी मुख-मुद्रा से इनकी महानता टपक रही है पर ये क्यों चले जा रहे हैं...? इनके पास न हाथी हैं, न घोड़े हैं, न रथ हैं, न अंगरक्षक हैं।

सच ही तो है, ये सात यात्री हस्तिनापुर राजपरिवार के अनन्य सदस्य हैं। पाँच पुरुष हैं और वे सभी युवा हैं। दो स्त्रियों में से एक युवा है, एक वृद्ध है।

सीधी सरल भाषा में यदि परिचय दूं तो ये कोई और नहीं, हस्तिनापुर के महाराजा धर्मराज युधिष्ठिर, बाहुबली भीम, धनुर्धर अर्जुन, नकुल, सहदेव, पाण्डुपत्नी कर्मठता की प्रतिमूर्ति महासती कुंती और शील की देवी महासती द्रौपदी हैं।

कहाँ राजपद और भव्य महल! सेवक, सेविकाएँ जहाँ प्रतिपल सेवा में हाजिर रहते थे, वे आज स्वावलम्बी बन किसी लक्ष्य की ओर बढ़े जा रहे हैं। महल में रहने वालों को आज झोंपड़ी भी नसीब नहीं है। आज यहाँ है तो कल वहाँ

संकल्प व साधना की कलाकृति : महासती कुन्ती

है और परसों न जाने कहाँ है। कितने ही नदी-नाले, पर्वत-घाटियाँ, उतार-चढ़ाव, वन-उपवन, ग्राम-नगर पार करते हुए अविश्रांत चलते रहना इनका जीवन बन गया है।

धर्मराज युधिष्ठिर की एक गलती ने पूरे परिवार को संकट में डाल दिया। द्यूत क्रीड़ा में राज्य, महल, सत्ता को ही नहीं, महारानी द्रौपदी और चारों भ्राताओं को भी हार बैठे हैं। द्रौपदी ने राजसुखों की बनिस्पत बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार किया है। ये महासंकल्पी आज से या कुछ दिनों से नहीं चल रहे, यात्रा करते करते कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये हैं।

वर्षा में भीगना, गर्मी में तपना, सर्दी में कनपटी तोड़ती बर्फीली हवाएँ सहना। कभी भूख सहना, कभी प्यासा रहना। कभी छत नहीं तो कभी आँगन नहीं। बाधाओं की हर रूकावट को चीरते हुए चलते रहना इनका ध्येय बन गया है।

इन सात यात्रियों में से एक है कुन्ती। उम्र से वृद्ध पर संकल्प से युवा। ढलती उम्र में तेरह वर्षों के अनजाने

कष्टप्रद सफर में शामिल होना उसकी संकल्प संपूर्ति का प्रकट प्रमाण है। सुख के उजाले में साथ देने वालों की इस दुनिया में कमी कहाँ है पर दु:ख के अंधेरे में तो अपनी छाया भी साथ छोड़ जाती है तो अपने और पराये की क्या बात कहे! कुन्ती ने सुख में संयम को और दु:ख में समत्व को साधा है, तभी तो इतिहास ने नारी जाति के स्वर्णिम पृष्ठों पर आदर्श, संकल्प और समर्पण की अनूठी कलम से उसका अमिट नामांकन किया है, जिसे काल के थपेड़े भी मिटा नहीं सकते।

पाठशाला में पठन - पाठन

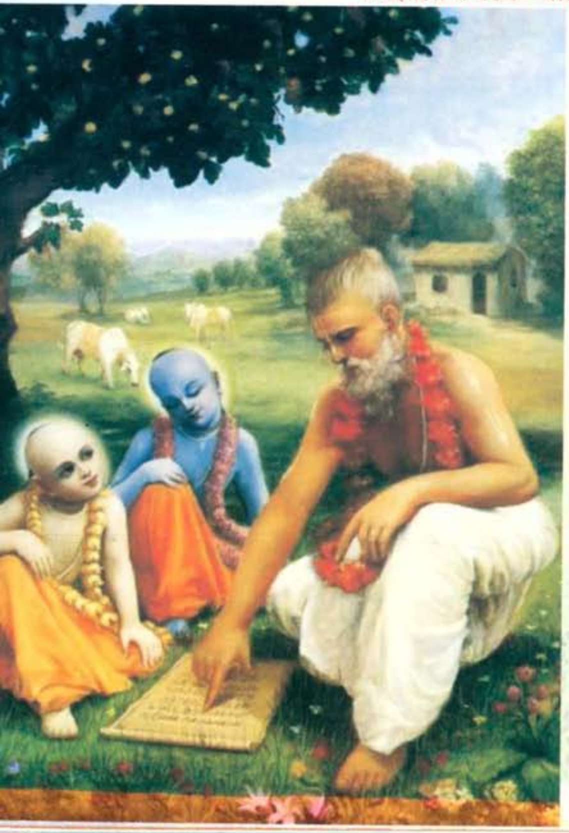

जैसे सहस्रांशु अपनी यात्रा में यात्रायित है, वैसे ही वे सात प्राणी भी क्रमबद्ध चले जा रहे हैं। आगे ही आगे युधिष्ठिर है और सबसे पीछे भीम।

चलते चलते अचानक द्रौपदी की दृष्टि एक सरोवर पर टिकी। उसके ठीक मध्य में चमकदार आभा लिये खिलखिलाता महकता कमल पुष्प। उसकी पंखुड़ियों से उठती दिव्य सुरभि। मन को पल-मात्र में मोह लेने वाला आकर्षक रूप-रंग। द्रौपदी के कदम वहीं ठहर गये...दृष्टि वहीं थम गयी। क्योंकि सुंदर कमल के आकर्षण का जादू कुछ अनूठा था।

छह प्राणी आगे बढ़ चले और द्रौपदी पीछे की पीछे। भीम ने पुकारा-चलो पांचाली! क्या रात यहीं गुजारने का मनोभाव है?

द्रौपदी बोली-हाँ! मन और हृदय का संदेश तो कुछ ऐसा ही आदेश दे रहा है। कमल पंक्तियों की कोमलता, कमनीयता और सुन्दरता तो देखो। आज अगर यहीं रूक जाते तो?

साश्चर्य युधिष्ठिर बोले-कहाँ? इस खुले नभ के नीचे?

ओहो! आप भी कितने डरपोक हैं। अगर सो भी जाये तो हम पर कौनसा आकाश गिर पड़ेगा?

वाह द्रौपदी वाह! तुम्हारी बुद्धि का भी जवाब नहीं। ये खुला नभ, और रोम-रोम को कंपायमान कर देने वाली हेमन्त ऋतु की शीत लहरें। कदाच् हम पर बर्फीली हवाओं का असर न हो, हो तो हम सह भी ले पर माँ कुन्ती के लिये तो असह्य ही है नभ-तले रात्रि प्रवास!

मैं भी जानती हूँ स्वामिन्! माताजी के लिये सर्दी का प्रकोप सहना आसान नहीं है फिर हम प्रवासियों के पास पर्याप्त वस्त्र-साधन भी तो नहीं है। पर मेरा मन आज जहाँ अटक गया है, उसे समझाने का कोई उपाय भी कहाँ है?

पाण्डुपुत्र बोले-देखो द्रौपदी! हम यात्री हैं और हमें यात्री की भाँति ही जीना चाहिये अन्यथा संकटों की लम्बी श्रृंखला खड़ी हो सकती है। फिर मन का क्या है। वह तो बिन पैंदे का लोटा है। कभी इधर लुढ़कता है तो कभी उधर। मन के ईशारों पर जीना हमारे लिये संभव नहीं, वह किसी के लिये उचित भी नहीं। वार्ता का उपसंहार करते युधिष्ठिर बोले-चलो! अब विलम्ब करना ठीक नहीं। देखो! सूर्य भी किरणों का जाल समेटने लगा है। फिर हम यात्रियों को स्थान की गवैषणा करनी है।

पर द्रौपदी तो उन्हीं पद्मों में सम्मोहित बनी ठगी-सी खड़ी थी। माता कुन्ती ने भी समझाया, अर्जुन-भीम ने भी यत्न किये पर द्रौपदी ठूंठ की भाँति वहीं खड़ी रही। उसका हठाग्रह नहीं हटा।

पाण्डु पुत्रों को नभतले रात्रि बिताने की बनिस्पत् तत्काल फूल लाकर द्रौपदी को थमाना और आगे की ओर बढ़ जाना उचित लगा।

भीम नीलकमल लाने के लिये सरोवर में उतरा। जैसे ही उसने अपना हाथ फूल को तोड़ने के लिये आगे बढ़ाया कि फूल आगे खिसक गया। फिर आगे बढ़ा कि फूल फिर से आगे खिसका। दो-चार बार खिसकने पर भी भीम हिम्मत कहाँ हारने वाला था। आखिर उसने एक छलांग लगायी और फूल लेकर सरोवर की पाल की ओर तेजी से बढ़ने चला। वह किनारे पर पहुँचता, उससे पहले उर्मियों का एक वर्तुल बना, एक भयानक लहर उठी और भीम को अदृश्य कर गयी।

एक पल पहले द्रौपदी जहाँ चमकदार माधुर्यसिक्त नीलकमल को पाने की उत्कंठा में नृत्य कर उठी थी, वहीं दूसरा पल उसके लिये अत्यन्त पीड़ाजनक बन गया। कुन्ती और द्रौपदी का कोमल हृदय चीख उठा। वे आँखें फाड़ फाड़कर सरोवर की ओर देखने लगी पर भीम कहीं भी दिख नहीं रहा था। उनके पाँव कांपने लगे। अर्जुन ने स्थिति की विकटता को पहचान कर कहा-अरे! तुम इतनी भयभीत क्यों हो? अर्जुन के रहते भीम का कोई भी बाल तक बांका नहीं कर सकता। सुनकर कुन्ती और द्रौपदी की जान में जान आयी। अर्जुन कमर कसकर सरोवर में उतरा। कुछ कदम आगे चला ही था कि एक भयंकर लहर उठी और अर्जुन को भी अपने साथ ले गयी। अर्जुन पूरी ताकत लगाकर ऊपर आया कि पुन: उसने दबोच लिया। दो-तीन बार डूबने और ऊपर आने के खेल के साथ अर्जुन अदृश्य हो गया।

युधिष्ठिर, कुन्ती, द्रौपदी पहले भीम की स्थिति से चिन्तित थे पर अब अर्जुन के साथ भी वही हादसा घटित होने से भौंचक्के रह गये। द्रौपदी की आँखें अश्रुओं से भर आयी।

युधिष्ठिर सान्त्वना देता हुआ बोला-अरे पांचाली! इसमें रोने की क्या जरूरत है? मैं अभी जाता हूँ और भीम व अर्जुन को लेकर आता हूँ। ऐसा कहकर वह सरोवर में उतरा। जिस अनिष्ट की आशंका से सभी के हृदय धड़क रहे थे, जिस भयंकर उर्मि ने भीम और अर्जुन को अपनी चपेट में लिया था, वहीं लहर फिर से उठी और युधिष्ठिर को लेकर शांत हो गयी। भ्राताओं के बचाव में नकुल और सहदेव के साथ भी वही दुर्घटना घटित हुई।

असहाय अवस्था में कुन्ती और द्रौपदी तट पर खड़ी थी। चिन्तित अवस्था में द्रौपदी वहीं मूर्च्छित हो गयी। पल दो पल बाद होश में आने पर विलाप करने लगी-ओह! मेरे कारण ही यह महान् संकट हम सब पर आया है। मैं न तो नीलकमल की जिद्द करती, न स्वामियों को इस प्रकार विपत्ति में फंसना पड़ता। निश्चित ही मेरी गलती अक्षम्य है। फिर कमल का क्या है-वे तो सरोवर में खिलते ही रहते हैं।

कुंती पुत्रवधू को सान्त्वना देती हुई बोली-पुत्री! यूं विलाप करने से समस्या का हल नहीं निकलने वाला। साहस और धैर्य से ही काम हो सकता है। क्या तूंने और क्या मैंने, हम सभी ने कष्टों के अनेक पड़ाव पार किये है और कष्ट के हर पड़ाव पर इष्ट देव ने हमें मुसीबतों से उबारा है।

अब तो अंधेरा भी छाने लगा था। पशुओं, चरवाहों का आवागमन शून्य हो गया था। एक ओर भयंकर जंगल, दूसरी ओर राज परिवार की दो महिलाएँ।

कुन्ती की आँखें सरोवर पर लगी हुई थी। अरे! धर्मराज युधिष्ठिर अदृश्य कहाँ हो गये। भीम की गदा और अर्जुन का महाधाराओं को चीर कर बाहर आने वाला बाण कहाँ छिप गया। अरे! सहदेव तो प्रकाण्ड ज्योतिष अध्येता है, उसने पहले ही अपनी ज्योतिष विद्या का प्रयोग करके हमें संकट से क्यों नहीं बचा लिया?

अरे! मैं भी यह सब क्या सोचने लगी। विपत्तियाँ किसी को पूछकर थोड़े ही ना आती हैं। जब महापाप का उदय होता है, तब बड़े बड़े पराक्रमी भी हार जाते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो हस्तिनापुर की महान् हस्तियाँ यूं वनों में नहीं भटकती।

ये शौरीपुर की राजमाता....हस्तिनापुर की राजमाता कष्टों के गर्त में गिरी है, तब यदुवंशी का कोई भी सहारा नहीं है। पिता अंधकवृष्णि और माता सुभद्रा कब के स्वर्ग सिधार गये। पर समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द और वासुदेव, ये दसों भ्राता कहाँ है। कोई भी तो नहीं सुन रहा तेरा दु:खड़ा।

आखिर क्यों? क्योंकि यह सब मेरे पूर्वकृत पापकर्मों का परिणाम है। मैंने ही पूर्व भवों में अपनी किस्मत की ललाट पर अशुभ रेखाएँ खींची है। तब भला दु:ख की इन घड़ियों में आतंक, भय और तनाव कैसा?

कोई भी किसी को शरण नहीं दे सकता। एक मात्र धर्म ही वह गोद है, जहाँ सिर रखकर जीव चैन की सांस सो सकता है। वह शाश्वत शरण है....शान्ति और समता की शरण है....धैर्य की ध्रुव शरण है।

रात्रि का नीरव अंधकार छाया हुआ था। लहरों की सरसराहट पल दो पल के लिये घबराहट जगा जाती। आतंक तो था ही। चारों ओर जंगली, मांसाहारी, खूंखार पशुओं का डेरा था। पर धर्म की पनाह में आते ही सारी दुर्बलताएँ दुम दबाकर पलायन कर गयी।

पुत्री! अब न घबराना है, न धैर्य को खोना है। हमारे पास कोई शस्त्र-अस्त्र न हुआ तो क्या हुआ, एक शरण है-धर्म की। चलो! हम उसी शरण में चले। व्यक्ति हर द्वार से खाली....निराश लौट सकता है पर धर्म के दरबार से कदापि नहीं।

तत्काल दोनों पद्मासन लगाकर नवकार के ध्यान में लीन हो गयी। रोम-रोम से श्रद्धा की फुहार बरसने लगी। निष्प्रकंप साधना का अपना एक वर्तुल बना। संयोग से उसी समय आकाश मार्ग से इन्द्र कैवल्य महोत्सव मनाने चले थे पर विमान की गति अवरूद्ध हो गयी। कुन्ती और द्रौपदी की निर्मल ध्यान धारा से प्रस्फुटित विद्युत्तरंगों ने उसे प्रभावित किया।

विमान की निराबाध गति में अवरूद्ध होना इन्द्रराज के लिये आश्चर्यकारी था। उन्होंने तत्काल अवधिज्ञानोपयोग

से जाना कि महासती कुन्ती और द्रौपदी संकटग्रस्त हैं। संकट का निवारण करना मेरा कर्त्तव्य है। संकट की स्थिति को वे ज्ञान बल से दो पल में जान गये।

सरोवर का अधिष्ठायक देव पाश में बंधे पांचों भ्राताओं को कह रहा था-तुमने मेरी आज्ञा लिये बिना सरोवर में उतरने का व फूल को तोड़ने का महापराध किया है। उसकी सजा तुम्हें भोगनी ही होगी। इतने में देवराज के अनुचर देव ने प्रवेश किया-अरे राक्षस! इन सज्जनों को पीड़ित करके क्यों अपने विनाश को आमंत्रित कर रहा है। इन्द्रराज का यह आदेश है कि इन पांचों को इसी पल मुक्त कर दो।

अहंकार में उछलता हुआ राक्षस बोला-तुम अपना रास्ता नापो। ये मेरे अपराधी हैं, अतः इन्हें कड़ी सजा देना मेरा अधिकार है।

देव पुनः मुखर हुआ-मूर्ख! क्यों अपनी हठ पर अड़ा है! इन्हें छोड़ता है कि देव-सेना को बुलाऊं।

देव का कड़ा रूख देखकर राक्षस डरा और पांचों पाण्डुपुत्रों को मुक्त कर दिया।

प्रातः का सवेरा जब पंछियों की चहचहाट से पुलकित हो उठा तब कुन्ती और द्रौपदी अपने ध्यान से बाहर आयी। पास में देखा तो पाँचों पाण्डु पुत्र उपस्थित थे।

एक ही रात्रि में महासंकट के एक दुःखद अध्याय का समापन हुआ। सातों यात्री पुनः अपनी मंजिल की ओर चल पड़े।

द्वादशवर्षीय वनवास और एकवर्षीय अज्ञातवास की दीर्घावधि को पूर्ण करके लौटे तो इन्द्रप्रस्थ के अधिपति दुर्योधन ने उन्हें राज्याधिकार देने से इंकार कर दिया।

अब भला वे अपना हक हड़पते देखकर चुप कैसे रहते। पहले श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया पर दुर्योधन की दुर्बुद्धि

ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। अपना राज्य पाने के लिये आखिरकार पाण्डुपुत्र रणस्थली में उतरे और श्रीकृष्ण की सहायता से युद्ध जीत लिया।

अठारह दिन चले इस महायुद्ध में भीष्म पितामह, द्रौणाचार्य, कृपाचार्य, शाल्व, जयद्रथ, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु आदि अनेक महायौद्धा समाप्त हो गये। अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध की बलिवेदी पर चढ़ गयी। धरा रक्तरंजित हो हाहाकार कर उठी।

पाण्डुपुत्रों के दिन बदले। युधिष्ठिर राजा बने। कुन्ती राजमाता और द्रौपदी महारानी बनी। बहुत लम्बे समय बाद कुन्ती ने सुख के दिन देखे। पर ये दिन भी ज्यादा नहीं टिके।

हुआ यों कि पद्मनाभ ने द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसका हरण कर लिया। पाण्डुपुत्रों के साथ-साथ कुन्ती ने भी द्रौपदी की शोध में पुरुषार्थ साधा। पर्वत, जंगल, गुफाएँ छान मारी पर द्रौपदी का कहीं कोई पता न चला। कुन्ती की प्रेरणा से पाण्डुपुत्रों ने द्रौपदी की खोज का अभियान जारी रखा। आखिर उन्हें पता चल गया कि धातकीखण्ड के राजा पद्मनाभ ने द्रौपदी का हरण किया है। वासुदेव श्रीकृष्ण की सहायता से उस अकृत्य की सजा देकर द्रौपदी को प्राप्त कर लिया।

लवण समुद्र पार करने में सुस्थित देव

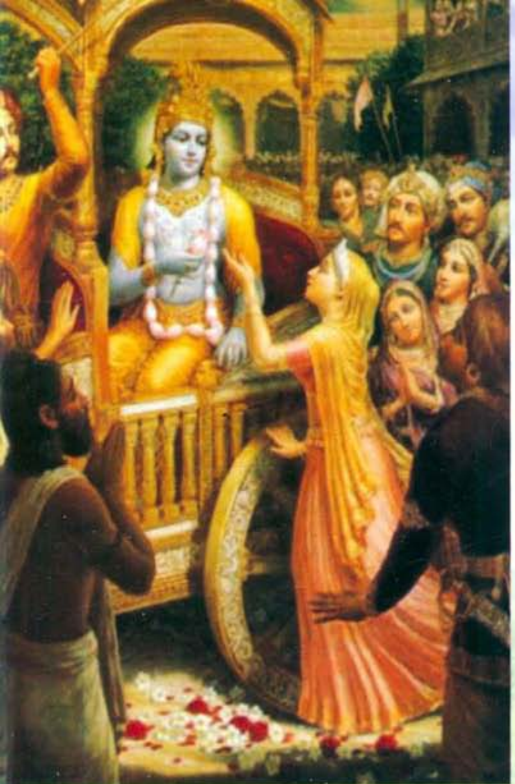

श्रीकृष्ण का बुआ कुन्ती के साथ वार्तालाप

का पूरा सहयोग रहा। श्रीकृष्ण की आज्ञा से पाण्डव आगे चले और नौका के द्वारा गंगा नदी को पार कर लिया। श्रीकृष्ण की अपरिमेय शक्ति को देखने के कौतुक में उन्होंने नौका वापस नहीं भेजी। इधर श्रीकृष्ण सुस्थित देव के सहयोग की भूरि भूरि अनुमोदना करके गंगा नदी के तट पर पहुँचे। बहुत प्रतीक्षा के पश्चात् भी जब नौका का कोई आसार नहीं दिखा, तब एक हाथ में रथ को लेकर दूसरी भुजा के बल पर गंगा पार कर आये।

नौका नहीं भेजने के वृत्तांत को जानकर श्रीकृष्ण पाण्डुपुत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। वे उन्हें मारने के लिये आगे बढ़े, तब द्रौपदी ने स्थिति की गंभीरता देखकर गिरधर के चरणों में गिरकर पाण्डुपुत्रों के जीवन-दान की भीख मांगने लगी। द्रौपदी की विनम्रता से प्रभावित होकर क्षमादान तो दे दिया पर अपने राज्य से निर्वासित कर दिया।

हस्तिनापुर पहुँचने पर जब कुन्ती को राज्य निष्कासन का पता चला तो वह श्रीकृष्ण के पास पहुँची-वासुदेव! निश्चित ही मेरे पुत्रों ने भयंकर भूल की है। तुमने हमें अपने अधिकार क्षेत्र से निर्वासित तो कर दिया पर अब तुम्हीं बताओ कि हम जाये तो आखिर जाये कहाँ? तीनों खण्डों पर तुम्हारा एक छत्रराज्य है।

कुन्ती रिश्ते में श्रीकृष्ण की बुआ लगती थी। उनके मन में अपनी बुआ के प्रति अत्यन्त सम्मान का भाव था। उन्होंने कहा-बुआ! तुम्हारे पुत्रों की ओर देखता हूँ तो एक इंच भी स्थान देने की इच्छा नहीं होती पर आपकी ओर भी देखना परम कर्त्तव्य है। मैं आपको समुद्र के दक्षिणी छोर पर रहने की आज्ञा देता हूँ।

कुन्ती ने ढाल बनकर एक बार फिर पुत्रों को कष्टों से उबार लिया।

जीवन की गाडी फिर से पटरी पर आ गयी। जीवन यात्रा में उनके नगर में एकदा केवली भगवंत का पदार्पण हुआ। श्रद्धालुओं की पंक्ति में कुन्ती भी थी।

वह प्रभु की पर्युपासना में उपस्थित हुई-प्रभो! इस जीवन में मैंने धूप और छाँव के हजारों पड़ाव पार किये हैं। अब अपनी मंजिल की ओर कदम भरना चाहती हूँ। आप अपना सान्निध्य प्रदान कर मेरा उद्धार करें।

कुन्ती के अन्तर में सहस्र उर्मियों की भांति उठी वैराग्य की तरंगें संयम के कितने ही पड़ाव पार करती हुई अन्ततः उस स्थान को उपलब्ध हो गयी, जहाँ अनन्त ज्ञान, दर्शन और चारित्र का दिव्य आनंद निरन्तर प्रस्फुटित हो रहा है।

- श्रमण प्रवर ! तेल के व्यर्थ जाने का मुझे किंचित् भी संताप नहीं है। उत्पत्ति और विनाश, हर पदार्थ के अभिन्न अंग हैं। हर फूल मुरझाने का शाश्वत नियम लेकर ही उत्पन्न होता है।

- हे मनीषीवर्य ! इसे आप सच्चाई मानिये कि मैं न तो सुधर्मा सभा में श्लाघ्य हूँ, न आपके द्वारा। महान् पुरूषों की दृष्टि में महानता होती है। इसमें उनकी ही गुणवत्ता है, मेरी नहीं।

- यह त्रिकाल में संभव नहीं कि पच्चीस तीर्थंकर हो जाये। यह तो ठीक ऐसी ही गप्प है, जैसे यह कहना कि अमावस्या को चाँद उगा है..पानी में से लपटें उठी हैं, पश्चिम में सूर्योदय हुआ है और आकाश में फूल खिला है।

एक अलभ्य कोहिनूर

महासती सुलसा

अरे नाग! देखो तो सही, इसकी मुस्कान कितनी मनमोहक है। ये बड़ी-बड़ी झील-सी गहरी आँखें....कमल की पंखुड़ियों जैसे गुलाबी अधर.... गालों में पड़ रहे सौभाग्य सूचक गड्ढे।

वास्तव में वह शिशु था भी कितना सुन्दर, देवोपम और मधुर! देखो तो देखते ही रहो। न आँखें थके, न मन भरे।

काफी समय उस नन्हें-न्यारे शिशु पर लाड-दुलार लुटाकर नाग सारथी अपने घर की दिशा में चलता बना। भोजन करके निवृत्त होकर अपनी शय्या पर शयन हेतु लेटा पर नींद पल-पल कोसों दूर भागती जा रही थी। मन डूबा था उस बालक की सुहावनी बाल चेष्टाओं में! एक-एक करके सारा वार्तालाप हृदय पर घूमता जा रहा था।

दो घण्टे बाद पतिदेव का श्यामल...मुरझाया हुआ मुखमण्डल देखकर सुलसा का व्यथित होना स्वाभाविक था।

उसने नाग सारथी के मना करने पर भी वैद्यराज को आमंत्रित किया। वैद्य परामर्श के अनुसार औषधि पान शुरू हो गया पर रूग्णता में कहीं कोई कमी नहीं आई। दो-तीन दिन यही परिस्थिति रही।

सुलसा का मन अत्यन्त व्यथित था। ज्वर पतिदेव को था, पीड़ा उसे हो रही थी।

सुबह-शाम उनकी सेवा-सुश्रुषा में पाँवों पर खड़ी थी पर स्वस्थता का कहीं कोई शुभ चिह्न दिखायी नहीं दे रहा था।

स्वामिन्! ऐसी कौनसी बीमारी है, जो वैद्यराज की पकड़ में नहीं आ रही है। दो दिन बीत गये पर स्वास्थ्य में रत्ती भर भी फर्क नहीं है। ये आपका मुरझाया चेहरा और आँखों की उदासी देखती हूँ तो मेरा दिल रो पड़ता है, नयन भीग-से जाते हैं। मेरा तो मानना है कि किसी अच्छे चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिये। मैं अभी ही समाचार....

नहीं....नहीं! सुलसे! इसकी....कोई....जरूरत....नहीं है। अटकते-टूटते शब्दों को जैसे तैसे जोड़कर नाग सारथी बोला। तुम अच्छी तरह जानती हो कि यह शरीर व्याधियों का ठिकाना है। करोड़ों रोगों का स्थान है यह जर्जर काया। पता नहीं, कब अशाता का उदय हो जाये और शरीर रूग्ण, थका-हारा, बूढ़ा और शक्तिविहीन हो जाये। फिर तुम दिन-रात मेरी सेवा में उपस्थित हो, ऐसे मैं मुझे किसी वैद्यराज को दिखाने की क्या जरूरत है?

स्वामिन्! पति की सेवा करना हर पत्नी का कर्त्तव्य है। इसमें मेरी कौन-सी महानता है? उत्तम औषधियों का सेवन भी स्वास्थ्य-दान में निष्फल रहा है, ऐसे में मेरा अनुमान कहता है कि रूग्णता तन की कम, मन की अधिक है। निश्चय ही आप मुझसे अपने मन की कोई न कोई बात छिपा रहे हैं। अन्यथा आपके होंठों पर उदासी यों पहरा न डालती।

सुलसा का हाथ अपने हाथ में लेता हुआ नागसारथी बोला-प्रिये! तेरे सिवा मेरी जिन्दगी में और है ही कौन? तुम विश्वास करो मुझ पर। ऐसी कोई भी बात नहीं है, जिसे तुमसे छुपाऊँ या तुम्हें न बताऊँ। देखो! मुझे लेकर तुम यों चिन्तित मत बनो। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।

सुलसा बोली-तो फिर ये उदासी क्यों? कोई न कोई पीड़ा आपके हृदय को कचोट रही है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैं आपकी अर्द्धांगिनी हूँ और आपकी इस मानसिकता को अच्छी तरह जानती हूँ कि आप अपने दुःख में किसी को भागीदार नहीं बनाना चाहते। अकेले ही अकेले व्यथा के घूंट पीने की आदत जो पड़ गयी है।

मैं संकल्पबद्ध हूँ कि जब तक आप अपने मन की बात नहीं कहेंगे, तब तक मेरे लिये अन्न-जल का त्याग है। कहते हुए सुलसा का मुख समर्पण मिश्रित संकल्प की दीप्ति से चमक उठा। आँखों में अश्रु के मोती छलछला आये। सुलसा के अकल्पित संकल्प से नागसारथी चौंक उठा।

मन मसोसकर भी उसे कहना पड़ा-देवी! प्रभु-कृपा से मेरे जीवन में कहीं कोई कमी नहीं है । यश....दौलत....

मान–सम्मान की झड़ी लगी हुई है पर इस बेशुमार सुख–सामग्री के बीच भी मुझे मेरी जिन्दगी वीरान और मरुस्थली प्रतीत हो रही है। वह परिवार रूपी उपवन भी क्या, जहाँ शिशु रूपी पुष्प की महक और चहक न हो।

मेरा गृहाँगन कब शिशु के पायल की झंकार से नृत्य करेगा? पतिदेव की आँखों में फैली रिक्तता का अन्तहीन छोर सुलसा खोजती रही और नाग कहता रहा–देवी! मैंने जप–तप सब कुछ किया। मनौतियाँ माँगी। प्रदक्षिणाएँ दी.... अनुष्ठान किये। फकीरों के पास गया। यंत्र–मंत्र–तंत्र प्रयोग किये। दवाईयों और दुआओं का प्रयोग भी निष्फल गया। क्या करूँ....क्या न करूँ, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा।

स्वामिन्! हम सभी पुरूषार्थ करने के अधिकारी हैं पर भाग्य हाथ में थोड़े ही ना है? हमारे पूर्वोपार्जित कर्म ही अवरोधक बन रहे हैं अन्यथा भाग्य की हमसे क्या दुश्मनी है? फिर आप जैसे सुज्ञ–प्राज्ञ श्रावक आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान करें, यह किस हद तक उचित है। क्या इससे आप प्राप्त खुशियों का आनंद उठा पायेंगे? सुलसा संत की भाँति मुखर हुई।

चिन्तित महासती सुलसा

प्रिये! क्या करूँ? सब कुछ जानता हुआ भी अपने आपको समझ नहीं पा रहा हूँ। और दो दिन पूर्व घटित घटना सुलसा को सुना दी।

देवी! क्या मेरी वंश–कुल–नाम की परम्परा यहीं रूक जाएगी? नागसारथी का चेहरा सर्वथा मुरझाया हुआ था।

सुलसा बोली–ऐसा क्यों कहते हैं आप? आपकी खुशी मेरी खुशी है और आपकी पीड़ा मेरी पीड़ा! मेरा तो कहना है कि आप सानंद दूसरी शादी कर लीजिये । इसमें मेरा कोई व्यवधान नहीं है । इससे आपको....

सुलसा के मुख पर हाथ रखता हुआ बीच में ही नागसारथी बोला–देवी! यह असंभव

है। यदि पत्नी एक पतिव्रता हो सकती है तो पति एक पत्नीव्रती क्यों नहीं हो सकता। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि मैं पहले ही एक पत्नीव्रत ले चुका हूँ। इस वाक्य के साथ एक तरह से चर्चा का समापन हो गया।

दूसरा दिन....! सुलसा की दृष्टि प्रवेश द्वार पर पड़ी तो पाया कि मुनिद्वय का गृहाँगन में आगमन हो रहा था। सुलसा के मन का पुष्प वैसे ही खिल गया, जैसे सूर्य को देखकर सूर्यमुखी पुष्प खिल जाया करते हैं।

मुनीन्द्रद्वय की वंदना-अर्चना करती हुई सुलसा बोली-पधारिये....पधारिये ! धन्याऽस्मि....कृतपुण्याऽस्मि.... आपकी सेवा का लाभ जो प्राप्त हो रहा है।

गुरुदेव! दुग्ध, फल आदि का लाभ देकर कृतार्थ कीजिये!

सुश्राविके! इन पदार्थों की आवश्यकता नहीं है। मुनि के स्वास्थ्य लाभ हेतु हमें लक्षपाक तेल की अपेक्षा है....। क्या तुम्हारे पास उपलब्ध हो सकेगा? गवैषणा और याचना की भाषा में मुनि मुखरित हुए।

आनंदित होती हुई सुलसा ने कहा-अवश्य मुनीश्वर! कल ही लक्षपाक तेल के तीन घड़ें आये हैं। यों कहकर वह लक्षपाक तेल लाने हेतु भीतर के कक्ष में गयी। शतगुणित श्रद्धा के साथ एक घट को हाथों में लिया और कदम लक्ष्य की ओर बढ़ा दिये।

यकायक हुआ ऐसा कि सुलसा की दहलीज से ठोकर लगी। घड़ा हाथ से छूटकर जमीन पर गिरा और देखते देखते सारा तेल धरातल पर बिखर गया। अचिन्तित भाव से वह पुनः वहीं गयी, जहाँ लक्षपाक तेल के अतिरिक्त दो घट स्थापित थे। भावनाओं का वर्तुल बनाती हुई वह अत्यन्त सजगता के साथ आगे बढ़ रही थी कि फर्श पर छितरे तेल पर उसका पाँव पड़ा....दूसरे ही क्षण पाँव फिसला.. घड़ा हाथ से छूटा और सारा तेल व्यर्थ चला गया।

आशा की एक किरण अभी भी अवशिष्ट थी। पर वही हुआ जो पहली बार हुआ था। इस बार तो वह स्वयं फिसलती- फिसलती बची।

आँगन में चारों ओर तेल ही तेल बिखरा हुआ था। मुनिवर बोले-ओहो श्राविके! इतना सारा बेशकीमती तेल यूं ही व्यर्थ हो गया। हमारी खातिर तुम्हें कितना बड़ा नुकसान उठाना पड़ा!

करबद्ध होकर सुलसा अनुताप भरे शब्दों में बोली-श्रमण प्रवर! तेल के व्यर्थ जाने का मुझे किंचित् भी संताप नहीं है। उत्पत्ति और विनाश, हर पुद्गल का शाश्वत स्वभाव है। बनना-बिगड़ना, उससे जुड़े हुए अंग हैं। एक फूल खिलता है तो मुरझाने का नियम लेकर ही उत्पन्न होता है। पुद्गलों में शाश्वत सौन्दर्य की परिणति कहाँ से आयेगी, जब वे स्वयं विनाशधर्मा हैं।

खुशी तो इस बात की थी कि मेरा पदार्थ आज संयमी आत्मा की संयम साधना में सहायक बन रहा था पर भाग्य मेरे साथ नहीं था। पूर्वार्जित कर्मों का घोर विपाकोदय हुआ और मैं सुपात्रदान के महालाभ से वंचित रह गयी। मेरे मन में बस इसी बात की कसक और व्यथा है। कहते कहते सुलसा के नेत्र सजल हो गये।

सुलसा की अद्भुत उदारता देखकर मुनिश्री अवाक् रह गये। दूसरे ही क्षण उन्होंने अपना दिव्य देव स्वरूप प्रकट किया। इस अकल्पित चमत्कार को देखकर सुलसा विस्फारित नयना बन गयी। विस्मय से हृदय हतप्रभ हो गया।

आश्चर्य को तोड़ते हुए देव बोले-देवी! सचमुच ही तुम्हारा गौरवशाली व्यक्तित्व अभिनंदनीय है। गजब की है तुम्हारी समता और धीरता की साधना। आज ही शक्रेन्द्र ने तुम्हारे गुणों का गरिमा-गान किया था पर हम तुच्छ देव उनके कथन पर संदेह कर बैठे।

भला इन्द्र देव का क्या! वे चाहे तो कभी किसी को प्रशंसा के शिखर पर आरूढ़ कर दे, चाहे तो निंदा के पाताल में पहुँचा दे। शक की शूल ने हमारे मन की शान्ति को छीन लिया। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये ही मैंने ये सारा मायाजाल रचा था। तुम्हें हमारे कारण कष्ट हुआ, तदर्थ हम क्षमाप्रार्थी हैं। निश्चय ही तुम शक्रेन्द्र की प्रशंसा से इक्कीस ही हो । इस हाड-मांस से निर्मित काया में स्थित तुम्हारी दिव्यात्मा को हमारे लाखों नमन हैं।

हे मनीषीवर्य! यह तो बड़े लोगों का बड़प्पन हैं। वे राई जितने तुच्छ गुण को भी सुमेरू बनाकर कहते हैं और समन्दर जितने अवगुणों का भी बिंदु की भाँति अंकन करते हैं। इसे आप सच्चाई मानिये कि मैं न तो सुधर्मा सभा में शलाघ्य हूँ, न आपके द्वारा। महान् पुरुषों के दृष्टि में महानता होती है। इसमें उनकी ही गुणवत्ता है, मेरी नहीं।

उत्तमश्राविके! आपकी अनासक्ति देखकर मेरा मन और अधिक प्रमुदित बना है। तुम जो चाहो, वरदान मांग लो। सहर्ष देव बोला।

ओ गुणनिधान! प्रभु की कृपा से मेरे जीवन में किंचित् भी न्यूनता नहीं है। भगवान ने मुझे सब कुछ दिया है। आपके अनुग्रह की मैं सर्वदा ऋणी रहूंगी। एक बार फिर सुलसा की निस्पृहता अभिव्यक्त हुई।

देवी! देव दर्शन कभी भी खाली नहीं जाता, वह अमोघ होता है। तुम्हें कुछ न कुछ तो मांगना ही होगा अन्यथा हम यहाँ से लौटने वाले नहीं।

देवों के अत्याग्रह ने सुलसा को अपने मन-द्वार खोलने के लिये मजबूर कर दिया। सोचती-सोचती वह सन्तान-अभाव के बिंदु पर पहुँच गयी पर 'कैसे कहूं?' यह सोचकर वह संकोच से सिमट गयी।

चेहरे पर छितरे संकोच के आवरण को हटाते हुए देव बोले-धर्मपरायणा देवी! संकोच करने की कोई जरूरत नहीं है। शीघ्र ही अपनी अभीप्सा प्रकट करो।

तनिक संकुचाती हुई सुलसा ने कहा-देववर्य! वर्षों से मेरा यह गृहआँगन सूना-सूना पड़ा है। यदि इस महल में घुंघरू छनक....उठे....तो....आगे वह कुछ भी कह न पायी।

क्षिप्रग्राही मनीषा से देव आधे वाक्य का पूर्ण-अभिप्राय समझ गये।

दो पल तक चारों ओर गहन सन्नाटा छाया रहा।

निस्तब्धता को भंग करते हुए देव बोले-देवगुरु उपासिके! चिन्ता न करो। तुम अत्यन्त भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे

पुण्य के द्वार अविलम्ब उद्घाटित होने वाले हैं। नौ माह बीतने पर तुम सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट पुत्र रत्न की जन्मदात्री बनने का गौरव प्राप्त करोगी। सुलसा उतावले अंदाज में बोली- देवप्रवर ! इसके लिये मुझे किसी विशिष्ट अनुष्ठान से जुड़ना होगा या फिर...।

नहीं! किसी अनुष्ठान की अपेक्षा नहीं है। ये लो बत्तीस गुटिकाएँ। इनके सेवन से तुम संस्कार-लक्षण सम्पन्न बत्तीस पुत्रों की माँ बनोगी।

देववर्य! आपका स्नेहिल अनुग्रह मेरे मन में सदैव अवस्थित रहेगा। सुलसा कृतज्ञता-अभिव्यक्ति की शैली में मुखर हुई।

विदाई के क्षणों में देव ने इतना ही कहा-सुश्राविके! कभी मेरी जरूरत पड़े तो स्मरण कर लेना, मैं तत्काल उपस्थित हो जाऊँगा। कहकर देव अन्तर्धान हो गया।

सुलसा कृतज्ञ भावों से निर्निमेष निहारती रही।

सूर्यास्त होने में एक घटिका शेष थी। ढलता हुआ सूरज स्वर्णिम प्रभात रूप नव भाग्योदय का संकेत देता हुआ विदा हो रहा था। ज्योंहि पतिदेव को गृहप्रवेश करते हुए देखा, सुलसा का मन मयूर नाच उठा।

आपको बहुत बहुत बधाई! सुनकर नागसारथी जिज्ञासित हुआ-किस बात की बधाई! ऐसा कौनसा आनंद प्रदायक समाचार उपलब्ध हुआ है जिसकी बधाई दी जा रही है!

आप पिता बनने वाले हैं, इसी की बधाई! सुलसा पतिदेव के कान के पास मुँह ले जाकर धीमे से बोली।

तुम भी कैसे मजाक करती हो सुलसे! मेरे जीवन में तो सन्तान का अभाव ही लिखा हुआ हैं । दु:खी मन से नागसारथी बोला।

प्राणेश! मैं मजाक या उपहास भला क्यों करूंगी?

मेरे खिन्न और दु:खी मन को प्रसन्न करने के लिये।

मैं झूठ नहीं बोल रही। आप शीघ्र ही पितृ-पद पाकर गौरवान्वित होने वाले हैं। उतावली होकर सुलसा बोली।

मेरी आत्मा इसके लिये साक्षी नहीं दे रही। लगता है तुम किसी सुन्दर सपने की बात कर रही हो जो कि यथार्थ के धरातल से कोसों दूर है। नागसारथी के शब्दों में फिर से वही अविश्वास ध्वनित हुआ।

स्वामिन्! मैं साक्षी हूँ, और किसकी साक्षी की जरूरत है? कहकर उसने अपराह्न में घटित मुनि-आगमन से पुत्र वरदान का प्रसंग कह सुनाया।

अब नागसारथी के मन में अविश्वास को कोई अवकाश नहीं था। उसके पाँवों में पंख आ गये। कल्पनाएँ पंछी की भाँति भावी के नभ में उड़ान भरने लगी। हृदय का धरातल आनंद की वर्षा से भीग उठा।

दूसरे ही दिन सुलसा प्रतिक्रमण, प्रभु-पूजा आदि नित्य नियमों से निवृत्त होकर देवप्रदत्त बत्तीस गुटिकाओं में से एक गुटिका ग्रहण करने लगी कि उसकी आत्मा में एक नया संस्कार जन्मा- देवानुग्रह से मुझे बत्तीस पुत्रों की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है पर बत्तीस पुत्रों की बजाय बत्तीस गुण सम्पन्न एक ही पुत्र की माँ होना ज्यादा अच्छा है । असंख्य सितारों के तेज की अपेक्षा षोडशकलायुत् एक शशि अधिक श्रेयस्कर है । फिर बत्तीस पुत्रों के आध्यात्मिक, नैतिक, व्यवहारिक और शारीरिक विकास की जिम्मेदारी मैं अकेली कैसे निभा पाऊँगी? ऐसा सोचकर सुलसा ने बत्तीस गुटिकाएँ एक साथ ग्रहण कर ली।

देवप्रदत्त गुटिकाओं का प्रभाव तो होना था। कुछ दिन तो शान्ति से बीते पर बीतते समय के साथ उदर-पीड़ा बढ़ने लगी और एक दिन वह भी आ गया जब वेदना असह्य हो गयी।

लगता है यह दर्द मेरे प्राण लेकर ही खत्म होगा पर मुझे मेरे प्राणों की परवाह नहीं है। चिन्ता गर्भ में पल-बढ़ रहे जीव की है। उसने तुरंत देव का स्मरण किया। पलक झपकने जितनी अल्पावधि में देव साक्षात् हुआ।

सुलसा के घर बत्तीस पुत्रों का जन्मोत्सव

सुलसा ने अपनी व्यथा की कथा कह सुनायी। देव बोला–अरे श्राविके। तूंने ये क्या कर दिया? एक साथ बत्तीस की बत्तीस गुटिकाएँ ले ली। इनका अपना अचूक प्रभाव है। तेरे गर्भ में बत्तीस जीव एक साथ उत्पन्न हो गये हैं। अब गर्भाशय तो गर्भाशय है, न कि वह माल रखने का गोदाम। अच्छा हुआ कि तूंने मुझे याद कर लिया अन्यथा अप्रिय घटना कभी भी घटित हो सकती थी। ऐसा कहकर देव ने दिव्य विद्या से सारी पीड़ा हर ली।

सुश्राविके ! हालांकि यह कहते हुए मुझे दुःख हो रहा है पर बताना भी जरूरी है कि तेरे ये बत्तीसों पुत्र युवावस्था में ही काल–कवलित हो जायेंगे।

सुलसा चौंकी–ऐसा भला क्यों?

भाग्य का योग ऐसा ही है। देव ने कहा।

तो क्या जीवन–दान में आपकी कोई भूमिका नहीं हो सकती? तनिक भारी मन से सुलसा प्रश्नायित हुई।

कर्म सत्ता के साम्राज्य में साधारण तो क्या, असाधारण व्यक्तित्व का भी हस्तक्षेप नहीं हो सकता। एक देव, देवन्द्र, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती तो क्या अनन्त वीर्यवान् तीर्थंकर भी होनी को अनहोनी करने में अक्षम है।

भाग्य–योग मानकर सुलसा मन को संतुलित करने का यत्न करने लगी।

दूसरे ही पल देव अन्तर्धान हो गया।

समय का चक्र घूमता रहा। देखते–देखते नौ माह की दीर्घ–अवधि पसार हो गयी।

स्वस्थता से सुलसा ने बत्तीस पुत्रों को जन्म दिया। सूना भवन आनंद की किलकारियों से झूम उठा। बधाई का

सिलसिला चल पड़ा। नागसारथी ने सभी का उचित सम्मान-सत्कार करते हुए उनकी बधाईयाँ सादर स्वीकार की।

सुलसा लालन-पालन में व्यस्त हो गयी। काल के ढलान पर वर्ष पर वर्ष खिसकने लगे। पुत्रों का शिक्षण, युद्ध कौशल का काल पूरा हुआ। विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। अपनी योग्यता के बल पर बत्तीस पुत्र सम्राट् श्रेणिक के अंगरक्षक के रूप में नियुक्त हुए। सुलसा के सुख के सूरज पर यकायक दुःख के मेघावरण आ गये।

घटना यों घटी कि मगधाधिपति श्रेणिक वैशाली अधिपति चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के रूप-लावण्य पर मोहित हो गये। वे उसे सुरंग मार्ग से गुप्त रूप से लिवाने गये। ज्येष्ठा तो हाथ न लगी पर सौन्दर्य में उसी की प्रतिकृति चेलना को पाने में वे सफल हो गये।

श्रेणिक के षड्यंत्र की बू पाकर चेटक ने उनके पीछे सैनिक दौड़ाये। उस समय बत्तीस भ्राता श्रेणिक के अंगरक्षक के रूप में साथ ही थे। उन्होंने डटकर विपक्ष का मुकाबला किया। वे श्रेणिक को सुरक्षित ले आये पर शरीर पर प्राणलेवा घाव हो गये। अन्ततः स्वामी सुरक्षा में अपने प्राणों को न्यौंछावर कर दिया।

ये क्षण नागसारथी के लिये वज्राघात से कम नहीं थे। सुलसा भी दुःखी तो हुई पर धर्म-ध्यान के बल पर स्वयं को आर्त्तध्यान से उबार लिया।

याचकों को मुहँमांगा दान

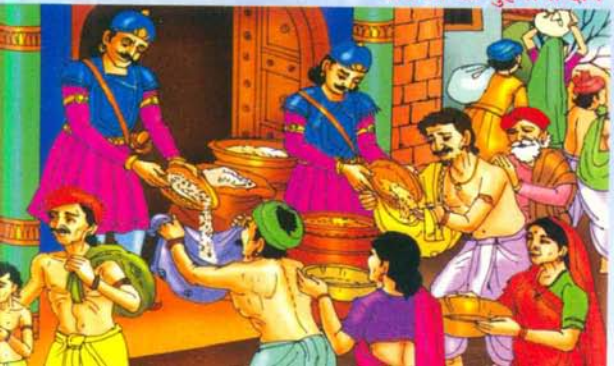

जीवन का प्रथम किनारा जन्म है और अन्तिम किनारा मृत्यु! हर जीव के साथ जन्म-मृत्यु का क्रम जुड़ा हुआ है। मृत्यु शरीर की होती है, जन्म भी शरीर का होता है, आत्मा तो इन दोनों से परे है। पुत्रवती होना कर्म का परिणाम था तो पुत्रहीना होना भी उसी का परिणाम है । मैंने सपना देखा था, सपना आया और गया, मैं तो दृष्टा हूँ। जहाँ पहले खड़ी थी, आज भी वहीं खड़ी हूँ।

दिन पर दिन और वर्ष पर वर्ष बीतते गये। सुलसा की धर्म-आस्था लगातार नयी चमक और आभा पाती रही।

अरी सुलसा! क्या कर रही हो? जल्दी आओ। सामायिक साधना से सुलसा अभी-अभी निवृत्त हुई थी कि पड़ौसन ने आवाज दी। पुकार में उत्कंठा स्पष्ट थी। गृहस्थी कार्यों को बीच में अधूरा छोड़कर सुलसा ने गृह-प्रवेश-द्वार पर नजर डाली।

अरी! तूं अभी तक योंहि खड़ी है। क्या उठने में विलम्ब हो गया?

नहीं! हमेशा की भांति ब्रह्ममुहूर्त्त में ही आँख खुल गयी थी। सुलसा सहजता से बोली।

अम्बड द्वारा ब्रह्माजी के रूप में अवतरण

तो अभी तक तैयार क्यों नहीं हुई? पड़ौस में रहने वाली सहेली ने त्वरित गति से दूसरा प्रश्न किया।

क्यों? क्या काम है? कहाँ जाना है? सुलसा उत्सुक हो बोली।

क्या तुझे पता नहीं कि आज अपने नगर में सूर्योदय हुआ है।

वो तो रोज ही होता है। इसमें कौनसी नयी बात है। उलझती हुई सुलसा बोली।

अरी! वह तो मुझे भी पता है पर आज नया सूर्य, नयी प्रकाश-किरण के साथ उदित हुआ है। जिज्ञासा को समाहित करती हुई पड़ौसिन बोली।

अरे! कैसा नया और कैसा पुराना? ये कोई

वस्त्र-आभूषण थोड़े ही ना है, जो पुराना हो जाये और नया आ जाये। पहेली सुलझने की बजाय अधिक उलझ गयी।

अरी भोली सुलसा! आज हमारे नगर में साक्षात् ब्रह्माजी अवतरित हुए है। दर्शनार्थियों की लम्बी कतार लगी हुई है। जय जयकारों से नभमण्डल गूंज उठा है। क्या तूं भगवान के दर्शन करने नहीं चलेगी? कहीं हम....

बीच में ही सुलसा बोली-सखी! ये तो बता, उनका रूप-स्वरूप क्या है....कैसा है उनका आभामण्डल!

सखी बोली-देख सखी! अभी तक मैंने उनके दर्शन किये नहीं हैं। पर जैसा कि लोगों के मुख से सुना है कि उनका सौन्दर्य गजब का और मन लुभावना है । चतुर्मुखी भगवान श्री ब्रह्माजी के संग माता सावित्री हंसासन पर विराजमान है । उनके प्रफुल्लित नयन....कर-कमलों से बरसती लक्ष्मी-धारा....। ऐसा रूप कि देखते ही रहो पर तृप्ति.. ..

बात पूरी करे उससे पहले ही सुलसा बोली-अरी! तूं मेरे कथन का अभिप्राय नहीं समझी। मैं उनके बाह्य रूप-सौन्दर्य का नहीं, आन्तरिक सौन्दर्य का प्रश्न कर रही हूँ। बाह्य रूप और निखार क्या जगत के लोगों में कम भरा पड़ा है। सुलसा ने अभिप्राय को स्पष्ट किया।

बिल्कुल ! तेरे कथन से मैं सर्वथा सहमत हूँ पर उनका आन्तरिक सौन्दर्य बाह्य सौन्दर्य से भी अधिक चित्ताकर्षक है। वे समस्त सृष्टि का विधि-विधान लिखते हैं। सकल जगत के ईश्वर-कर्त्ता-भर्त्ता है।

अरी! तूं भी कैसे भोली बातें करती है? जगत के निर्माण से उनका सौन्दर्य निखरता नहीं, बिगड़ जाता है। यह दु:खों से भरा संसार! कहीं कोई अपंग है तो कोई शानदार वाहनों में सफर करता है। कोई कितने ही दिनों तक भूखा सोता है तो कोई छप्पन भोगों से पेट भरता है। किसी की सेवा में हजारों सेवक हाजिर खड़े हैं तो किसी के माथे से माँ-बाप का छत्र ही छिन गया है।

सुखी-दु:खी, विद्वान्-मूर्ख, गरीब-अमीर, राजा-रंक, रोगी-स्वस्थ, पापी-धर्मी, सुन्दर-कुरूप, ऐसी न जाने

कितनी-कितनी विषमताएँ पग-पग पर बिछी हैं, तब विधि के विधाता का समदर्शित्व, मानसिक एकत्व और ईश्वरीय पूर्णत्व खण्डित, विच्छिन्न और लांछित नहीं होगा? सुलसा ने सहेतुक अपना मत रखा।

हाँ। वह तो ठीक है पर यह सब ईश्वर कृत विविधता नहीं है । वे लेख तो लिखते हैं पर उसके कर्म के अनुसार ही। यदि कोई अच्छा करता है तो वे अच्छा आलेख लिखते हैं। बुरा करने पर बुरा लेख लिखते हैं, अतः उनका ईश्वरत्व सर्वथा निष्कलंक है।

अरी बहिन! इस जगत् में न तो कोई सुख देता है, न दुःख देता है। वस्तुतः हमारा जीवन ही हमारे भविष्य की रचना करता है। मैं आज जो भी पा रही हूँ, वह बीते कल का परिणाम है और आज जो कर रही हूँ, उसी के आधार पर मुझे भावी में सुफल अथवा दुष्फल भुगतना होगा। हमें हमेशा यह समझ के चलना चाहिये कि हम यदि किसी पर फूल बरसा रहे हैं तो अपने लिये फूलों की व्यवस्था कर रहे हैं। यदि किसी की राहों में कांटें बिछा रहे हैं तो अपने लिये कांटों की व्यवस्था कर रहे हैं। जो देते हैं, वो ही पाते हैं। इसमें दो मत नहीं हो सकते। सुलसा तनिक दार्शनिक अंदाज में मुखर हुई।

आश्चर्य से सुलसा पर दृष्टिपात करती हुई पड़ौसिन बोली-तो फिर तुम ब्रह्माजी को भगवान के रूप में नहीं मानती?

सुलसा फिर से उसी दार्शनिक व तार्किक शैली में प्रस्तुत हुई-ब्रह्मा को भगवान मानना या नहीं मानना, यह मेरा निजी निर्णय नहीं है। मैं हर पहलू को सिद्धान्त और सच्चाई के पलड़े में तोलती हूँ। वह हर व्यक्तित्व मेरे लिये वंद्य, पूज्य और समर्च्य है, जो राग-द्वेष से ऊपर उठ चुका है, जिसमें संसार की प्रेरणा, वासना की कामना, यश की याचना और विषयों की झंखना नहीं है, फिर भले ही उनको शिव, कृष्ण, बुद्ध, या ब्रह्मा के नाम से क्यों न जाना जाता हो। जिसमें विलासिता, वासना और विकार की तरंगें हैं, वे मेरे आदर्श नहीं हो सकते, फिर भले वे अर्हत् महावीर या पार्श्व के रूप में विख्यात क्यों न हो।

सुलसा के असांप्रदायिक व्यक्तित्व से पड़ौसन अत्यन्त प्रभावित हुई। कुछ पलों के तत्त्व-उद्‌बोधन से उसकी चेतना पर छाये जन्मों जन्म के कुसंस्कार धुल गये।

प्रतिप्रश्न किये बिना पड़ौसिन बोली-चलो। मैं चलती हूँ। कहीं ज्यादा विलम्ब हो गया तो इस स्वर्णिम अवसर को खो बैठूंगी। तुम भी कदाच् उस मार्ग की ओर आओ तो दर्शन का अवसर देख लेना। हिदायत की भाषा में उपसंहार करती हुई पड़ौसिन बोली।

देखो बहिना! आना होता तो अवश्य आती। महापुरुषों के दर्शन-वंदन कोई फल, फूल या सब्जी खरीदने जैसा साधारण काम तो नहीं है जो यूं ही बिना आस्था-आलम्बन के निपटा लिये जाये। फिर वहाँ जाने में मुझे आत्मा का कोई लाभ नहीं दिखता, तो ऐसे अनावश्यक परिभ्रमण का क्या अर्थ? सुलसा ने जैसे अपना अन्तिम निर्णय सुना दिया।

सुलसा के तात्त्विक विचारों पर चिन्तन करती हुई पड़ौसिन अपने घर की ओर बढ़ चली!

अम्बड द्वारा विष्णु के रूप में अवतरण

पूरी नगरी में तांता लग गया। कोई संतान की कामना लेकर पहुँचा, कोई सत्ता-सम्पत्ति की याचना लेकर! दूर-दूर से लोग भाव विभोर हो ब्रह्म-दर्शन के लिये पहुँचने लगे।

ब्रह्मदेव जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का समाधान करते रहे। गरीबों को अन्न दान, बेघर को स्थान दान, रोगी को आरोग्य दान देकर अपनी महिमा का विस्तार किया। रात्रि के तृतीय प्रहर के बीतते बीतते लोगों की भीड़ कम हुई। ब्रह्मदेव विश्राम हेतु पधार गये।

रात्रि का अंधेरा छंटा। उजाला होने के साथ लोग पुनः उसी दिशा में दर्शनार्थ पहुँचने लगे पर जैसे उनकी आशाओं पर सौ-सौ घड़े पानी फिर गया क्योंकि वहाँ न ब्रह्माजी थे, न सावित्री माता थी, न हंसासन था। पर उनकी निराशा शीघ्र ही आशा में बदल गयी। चलो! चलो! नगर की दक्षिण दिशा में साक्षात् विष्णु भगवान प्रकट हुए हैं।

सभी लोग अपने भाग्य की सराहना करते हुए कह रहे थे- अरे ! धरती का और उस धरा पर रहने वालों का भाग्य जगता है, तभी भगवान अवतरित होते हैं। राजगृही की इस पावन भूमि का प्रताप ही कुछ अनूठा है, तभी तो कल भगवान ब्रह्मा हमारे नगर की फिजाओं को पवित्र करने के लिये साक्षात् पधारे और आज विष्णु भगवान हमें पवित्र-दर्शन का महादान देने के लिये उपस्थित हुए हैं।

अम्बड द्वारा शिव के रूप में अवतरण

ओह! कितना निराला.....कितना आला इनका आभावलय है। रूप-रस पान करते ही जाओ पर तृप्ति ही न हो। उनके श्यामल देह-वर्ण पर पीताम्बर की शोभा कुछ अनूठी ही प्रतीत हो रही है। श्वेत-उज्ज्वल शंख....अनुपम गदा और दिव्य चक्र देखकर लोग जिज्ञासा, विस्मय और श्रद्धा से भर गये।

आज तीसरा सूर्योदय था, जब राजगृही का पुण्य क्रमशः चमक रहा था। पश्चिम दिशाभिमुखी देवों के देव भोलेनाथ महादेव का महिमा गान चारों दिशाओं में छाया हुआ था।

शिव शंकर के सुखकर-प्रत्यक्ष दर्शन पाकर हजारों-लाखों नयन पटल धन्य-धन्य हो गये। उनकी कृष्णवर्णीय चमकदार

काया। माथे की चोटी से अवतरित हो रही पावन मंदाकिनी। गले में लिपटा हुआ प्रलम्ब विषधर....निकट ही दैदीप्यमान सती शिरोमणि मैया पार्वती।

आनंद का सागर समस्त तटों का उल्लंघन करके बह चला। दूर-सुदूर देश-प्रान्त के लोग आने लगे। राजमार्ग संकड़ा पड़ गया। धर्मशालाओं व आरामशालाओं में पग रखने की जगह न रही। अम्बर और अवनि शंकर भगवान के जयकारों से गूंज उठे।

माया करके अम्बड बना तीर्थंकर

पिछले इन तीन दिनों में ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भगवान के दर्शनों का जादू जन-मानस पर छाया रहा। क्या बड़े....बच्चे....बूढ़े....महिलाएँ। सभी दौड़े-दौड़े पहुँचे पर सुलसा न तो उनके उपपात में पहुँची, न मन में दर्शन की उत्कंठा जगी। कितने लोग मनाने आये-चलो सुलसा! यह हठ अच्छी नहीं। बाद में पछताओगी। पर सुलसा इन सब से कोसों दूर और सर्वथा निर्लिप्त थी। भय, प्रलोभन, दबाव, सब निष्फल गये। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, तीन-तीन भगवानों का क्रमशः अवतरण जन-समुदाय के लिये आश्चर्य का कारण था। महा-आश्चर्य की तरंगें हृत्सागर में आंदोलित हो रही थी पर चौथे दिन सोने का सूरज उगा। ठीक उत्तर दिशा में अर्हत् तीर्थंकर परमात्मा प्रकट हुए।

समवसरण सजा। अशोक वृक्ष, सुरपुष्प वृष्टि, दिव्य ध्वनि आदि अष्ट प्रातिहार्यों की रचना हुई। लोगों के नेत्र आनंद से विस्फारित हो गये।

ओह! आज तारणहार तीर्थंकर अवतरित हुए हैं, यह देख सुलसा की खास सखियाँ और आस-पास में रहने वाले लोग उसे सूचित करने के

लिये पहुँचे।

अरी सखी! आज तो महा-आश्चर्य और अपार आनंद मनाने का दिन है। उत्सुकता से एक सखी बोली।

अचरज से भरकर सुलसा ने पूछा-क्यों? ऐसा क्या हुआ है? सुलसा का गाल थपथपाती हुई एक सखी बोली-अरी! तूं तो अपनी दुनिया में ही खोयी रहती है। कभी तो बाहर की भी खबर ले लिया कर।

पर हुआ क्या है?

आज तेरे भगवान....तीर्थंकर भगवान प्रकट हुए हैं। समवसरण की भव्य रचना देखने के लिये लोग उमड़ पड़े हैं। द्वादश पर्षदा- साधु-साध्वी व देव-देवी से संयुत उनकी दिव्य आभा देखते ही बनती है। तीन दिन तो तूं हमारे साथ चली नहीं, कोई बात नहीं। चल, अब जल्दी से चलते हैं। सखी ने मनुहार की भाषा में कहा।

नहीं.... नहीं! मैं नहीं चलूंगी! सुलसा के अप्रत्याशित प्रत्युत्तर से सखी चकित हुए बिना न रही।

अरी! तूं यह क्या कह रही है? कहीं तेरी मति भ्रष्ट तो नहीं हो गयी? तीर्थंकर प्रभु चलकर तेरे नगर में आये हैं और तूं मना कर रही है। झिड़कती हुई एक सखी बोली।

बहिना ! हमारे तीर्थंकर परमात्मा तो श्रमण श्रेष्ठ महावीर हैं और अभी वे राजगृही से काफी दूर चंपा में विचरण कर रहे हैं। राजगृही में उनके पदार्पण का कोई संकेत या संदेश भी नहीं मिला है।

तो क्या वे अर्हत् नहीं? साश्चर्य एक सहेली ने पूछा। मैं तो नहीं मानती। सुलसा ने दो टुंक जवाब दिया।

तो फिर वे हैं कौन, जो अपने आपको तीर्थंकर कह रहे हैं? ....एक सखी पुन: प्रश्नायित हुई।

यह तो उनसे ही जाकर पूछना चाहिये कि वे कौन हैं? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि अपने गाँव में कोई इन्द्रजालिया या ठग-मायावी आया हुआ है, जो प्रतिदिन नये-नये रूप बनाकर लोगों को चमत्कृत करके ठग रहा है।

इधर समवसरण में देशना का प्रारंभ हो चुका था। लोगों की अपार भीड़ जमी हुई थी पर उनमें सुलसा कहीं भी नहीं थी।

तीर्थंकर के मुख से प्रश्न उछला-सुलसा नहीं आयी?

नहीं भंते ! हम उसे बुलाने गये थे पर उसका कहना है कि मैं उन्हें तीर्थंकर नहीं मानती।

तत्काल प्रभो अपने आसन से खड़े हुए और सुलसा के घर की ओर बढ़ चले । हजारों हजारों लोग चींटियों के रेले की भाँति उनके पीछे चल रहे थे। जिज्ञासा, कुतुहल, उत्कंठा जैसे अनेक भावों का आभामण्डल उनके साथ था।

सुलसा के घर की ओर प्रस्थान

अपने घर के बाहर भारी भीड़ को देखकर सुलसा बाहर आयी। तीर्थंकर ने पूछा-अरे सुलसा! मेरे दर्शन, वंदन, अभ्युत्थान और सत्कार के लिये क्यों नहीं आयी? उपालंभ सुनाते हुए तीर्थंकर बोले।

सुलसा ने कहा-मैं आपको तीर्थंकर नहीं मानती।

मैं केवलज्ञान धारक तीर्थंकर हूँ और तूं कह रही है कि मैं अर्हत् नहीं। तो क्या ये सारे लोग मूर्ख हैं, जो प्रातः से मेरी पर्युपासना के लिये श्रद्धावनत हैं। क्या मेरी गरिमा....मेरी महिमा अर्हत् से कम है? ये जनमेदिनी....शिष्य संपदा.... स्वर्ण कमल....अष्ट प्रातिहार्य....क्या मुझे तीर्थंकर के रूप में प्रमाणित नहीं करते?

लोगों के टोले आपके और उनके लिये तीर्थंकरत्व के प्रमाण स्वरूप होंगे, मेरे लिये नहीं। चौबीसवें तीर्थंकर महाश्रमण महावीर अभी चंपा में विचरण कर रहे हैं। उनके प्रति मेरी श्रद्धा का जो प्रवाह है, उसे मोड़ने का कोई भी कितना ही प्रयत्न करे या प्रलोभन, दबाव, भय का प्रयोग करे पर उस धारा को कोई मोड़ नहीं सकेगा। सुलसा की आँखों में संकल्प और श्रद्धा का तेज उभर आया। और तो और, कोई मेरी आत्मा को प्राणों से अलग कर ले तो भी मुझे बदल न सकेगा।

ए नादान सुलसे! कभी भी नहीं घटित होने वाली अपवादजनक घटनाएँ भी कभी-कभी घटित हो जाती हैं। मेरा पच्चीसवाँ तीर्थंकर बनना भी एक अपवाद है। कहते-कहते उनकी आँखों में लालिमा उभर आयी। हाथ-पाँव कांपने लगे।

नादान आप है या मैं हूँ, यह तो कोई ज्ञानी ही बता सकेगा पर आपको इतना भी पता नहीं कि एक कालचक्र में भरत क्षेत्र में चौबीस ही अर्हत् होते हैं, पच्चीस नहीं। यह त्रिकाल में संभव नहीं कि पच्चीस तीर्थंकर हो जाये। यह तो ठीक ऐसी ही गप्प है जैसे कोई कहे कि अमावस्या को चाँद उगा है....पानी में से लपटें उठने लगी है.... पश्चिम में सूर्योदय हुआ है और आकाश में पुष्प खिला है।

मेरे लिये लोगों के टोलें, जयकारें, देव-देवियों की सेवा आदि तीर्थंकर बनने-होने में प्रमाणभूत नहीं हैं, यह तो ऐन्द्रजालिक भी कर सकता है। मैं राग-द्वेष से मुक्ति को ही अर्हत् की अर्हता में प्रमाणभूत मानती हूँ। फिर तीर्थंकरत्व को अभिव्यक्ति करने वाली वीतरागता तुममें कहाँ? तुम्हारी आँखें गुस्से में लाल हुई जा रही है, तुम अपने

सत्कार-सम्मान व दर्शन-वंदन की कामना रखते हो। यह दिन के उजाले की तरह अत्यन्त स्पष्ट है कि तुम राग-द्वेष से परिपूर्ण हो और तीर्थंकरत्व की योग्यता तुममें नहीं है। दूसरे ही क्षण जैसे एक चमत्कार हुआ।

वहाँ अब न तीर्थंकर थे, न अष्ट प्रातिहार्य, न देव-देवी। सामने प्रस्तुत था राजगृही के लोगों का चिर परिचित अम्बड़ संन्यासी।

सुलसा भी चौंकी तो सही पर जल्दी ही सहज हो गयी।

अम्बड़ अभिनन्दन की शैली में बोला-बहिना ! सचमुच तूं धन्य है....कृतपुण्य है....वंदनीय और अभिनंदनीय है।

चिहुँदिशि उपस्थित जनता आश्चर्य से अभिभूत थी।

सभी के आश्चर्य का उपशमन करता हुआ अम्बड़ बोला-कुछ दिनों पहले मैं चंपापुरी गया हुआ था। वहाँ अर्हत् महावीर धर्मोद्योत करते हुए जागृति का संदेश दे रहे हैं। कार्य की पूर्णता के उपरान्त मैं चंपा से प्रस्थान करने से पूर्व परमात्मा की पर्युपासना में उपस्थित हुआ। विनम्र वंदनावली के उपरान्त उनके श्रीमुख से प्रवचन-रस-पान किया। जब मैंने राजगृही आने की बात प्रभुश्री के समक्ष प्रकट की तो उन्होंने सुलसा की प्रशंसा करते हुए कहा-अम्बड़! सुलसा समय का एक दिव्य दस्तावेज है। उसका अर्हत् धर्म के प्रति जो आस्था का भाव है, वह अनुत्तर है। उसे झुकाने का अर्थ हैं-मेरु पर्वत को तराजू में तोलने की बाल चेष्टा करना।

अम्बड़! तुम अत्यन्त भाग्यशाली हो कि राजगृही की उसी माटी में खेलने-कूदने का अवसर मिला है, जिस नगरी का महकता हुआ गुलाब सुलसा है। तुम जा रहे हो तो मेरी ओर से उसे धर्मलाभ का संदेश जरूर देना।

तदुपरान्त सुलसा की ओर अभिमुख हो अम्बड़ बोला- भगिनी! तीर्थंकर की वाणी सर्वथा निःशंक, तत्त्वपूर्ण और श्रद्धेय होती है, मैं भी उसके प्रति आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से आस्थान्वित था पर मेरे मन में एक दूसरा भाव जगा कि जिसकी अडोल श्रद्धा की श्लाघा स्वयं अरिहंत अपने मुख से फरमाते हैं, वह कितनी पुण्यशालिनी होगी। मैंने तुम्हारे

श्रद्धा-समुद्र के अथाह तह तक पहुँचने की वैसी ही बाल चेष्टा की जैसे कोई नादान छिद्र वाली थैली में हवा भरने का उपक्रम करता है।

मैंने अपनी वैक्रिय लब्धि के बल पर विविध रूप-स्वरूप बनाकर तुम्हें आकर्षित करने का निष्फल प्रयास किया। राजगृही की सारी जनता ही नहीं, दूर-सुदूर ग्रामस्थ लोग भी आएँ पर तूं नहीं आयी।

वास्तव में तुम भाग्यशालिनी....पुण्यशालिनी....तत्त्वधारिणी....यश विस्तारिणी हो, जिससे यह राजगृही ही नहीं, सम्पूर्ण भूमण्डल तुझसे गौरवान्वित है।

सम्यक्त्व का अनमोल रत्न पाकर तूंने वह धन पा लिया है, जिसके समक्ष संसार की समस्त ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ और लब्धियाँ बौनी, निस्तेज और मूल्यहीन ठहरती हैं। प्रभु का धर्मलाभ का संवाद सुनकर सुलसा का हृदय कमल उसी तरह खिल उठा, जैसे चन्द्र दर्शन पाकर चन्द्रमुखी पुष्प विकस्वर हो उठता है।

अम्बड़ को साधर्मिक भाई जान सुलसा ने उसका समुचित सम्मान और आवभगत की।

सुलसा की अप्रतिम आस्था की अनुमोदना ने अनेक भव्यों की श्रद्धा को पुष्ट किया तो कितने ही जीव समकित रत्न को उपलब्ध हो गये।

समय की धारा प्रवाहित होती रही। सुलसा श्रद्धा और आचरण की अमृत-धारा में भीगती रही। कर्मों की परतें उतरती रही और निर्मल एवं अखंड श्रद्धा के परिणाम स्वरूप आगामी उत्सर्पिणी में निर्मम नामक तीर्थंकर बनने का धरातल प्राप्त कर लिया।

अगले भव में सुलसा के स्वागत में पांचवां स्वर्गलोक खड़ा था। उसकी यात्रा यही परिपूर्ण नहीं होगी अपितु इस पड़ाव को पार करके वह परम-चरम धाम को उपलब्ध होकर अनन्त सौन्दर्य की स्वामिनी बनेगी।

- राजसुखों में पली राजकुमारी आज कंटीली, पथरीली वनवीथियों पर पति का अनुसरण करती हुई चल रही थी।

- अभाव और दुःख उसके एक भी रोम में नहीं था।

- दमयन्ती सोच रही थी – सचमुच ! कर्म की गति न्यारी है। वह एक पल में रंक को राजा और राजा को भिखारी बना देता है।

महासतीत्व का महकता गुलाब

महासती दमयन्ती

महासती दमयन्ती

आज तो परीक्षा का दिन है। देखते हैं-भाग्य देवता किस पर मेहरबान होता है।

पर भैया! जिस राजकुमार को हमारी राजतनया पसंद करेगी, उसका भाग्य-सितारा अलबेली चमक लिये हुए होगा।

विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिनपुर की गली गली में तोरणद्वार सजे हुए हैं। राजमार्ग पर भारी चहल-पहल नजर आ रही है।

हर नयन और मन उन घड़ियों के इन्तजार में है जब सम्राट् भीम की पुत्री दमयन्ती सैंकड़ों प्रतापी, गुणवान् एवं स्वरूपवान् राजकुमारों में से किसी एक के गले में पुष्पहार समर्पित करेगी।

दमयन्ती कोई सामान्य राजपुत्री नहीं थी। उसका स्वप्न द्वारा संकेत प्राप्त हुआ था।

दमयन्ती यानि रूप, सौन्दर्य और कला की अप्रतिम प्रतिमा।

स्वभाव से अत्यन्त मृदु और बुद्धि में तीक्ष्ण।

महाराजा भीम की एकलौती सन्तान। जिसका लालन-पालन देव-कन्या के रूप में हुआ, उसके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव।

हर होंठ पर एक ही चर्चा थी।

भगवान करे, गुणवती दमयंती को ऐसा वर मिले कि वह उसके जीवन का वरदान बन जाये। उसकी झोली सदा

खुशियों से हरी-भरी रहे।

स्वयंवर चयन की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी।

वस्त्राभूषण में सजी राजकुमारी अप्सरा के सौन्दर्य को भी मात दे रही थी।

सिंहासन-आरूढ़ महाराजा भीम !

निकट उपस्थित महारानी पुष्पवती !

हजारों की संख्या में उपस्थित प्रजाजन और शान-सम्मान से बिराजमान महाराजा और राजकुमार।

आप अंग देश के नरेश हैं, देवी! राजकुमारी से साथ में चल रही सखी ने कहा। दमयन्ती ने एक नजर उस पर डाली और आगे बढ़ गयी।

देवी! ये कलिंग के प्रतापी सम्राट् हैं। अपनी धनुर्विद्या के लिये ख्याति-प्राप्त। दमयन्ती ने उसे तिरछी निगाहों से देखा तो जैसे उनके अधर प्रसन्नता के फूलों से खिल उठे। इतने में राजकुमारी ने कदम आगे बढ़ा दिये।

राजकुमारी जी! ये मगध के सम्राट् ! अत्यन्त स्वरूपवान् !

दमयन्ती के होंठो की मुस्कान देखकर उसका सीना चौड़ा हो गया पर दमयन्ती यहाँ भी ठहरी नहीं।

ये बंग के अधिपति....! शूरवीरों में से एक !

ये द्राविड के नरेश....! भुजाओं में भरा पराक्रम !

ये तुंग प्रदेश के सम्राट् ! अत्यन्त मृदु और सरल !

कच्छ, सौराष्ट्र, अवन्ति, कितने कितने महाराजाओं व राजकुमारों के सम्मुख हाथ में पुष्पहार लेकर दमयन्ती आगे बढ़ती जा रही थी।

देवी! ये हैं अयोध्या नरेश निषध के ज्येष्ठ पुत्र नल ! धर्मप्रिय, साहसी और अत्यन्त रूपवान् !

दमयन्ती की आँखें उनके गंभीर मुख पर जा टिकी !

आभा और प्रभा सम्पन्न उनका शरीर-सौष्ठव !

भुजाओं में छिपा क्षात्र बल और आँखों से छलकती मृदुता।

सहसा दमयन्ती के होंठ हिले-स्वामिन्! आज से मैं आपको समग्र समर्पित ! नयन झुके और दमयन्ती ने वरमाला नल के गले में डाल दी।

पूरा परिसर हर्ष की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। प्रसन्नता और बधााई की जैसे बाढ़ आ गयी।

नल और दमयन्ती का सविधि विवाह सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वैराग्यवासित हो महाराजा निषध गृहवास से संन्यास में प्रविष्ट हो गये।

दमयन्ती द्वारा नल का चयन

राजा बनकर नल न्याय और निष्ठापूर्वक राज्य करने लगा। अपने सौम्य और मधुर व्यवहार से वह अल्पावधि में ही जन जन की जुबां पर छा गया-राजा हो तो ऐसा, जो अपनी प्रजा की पुत्र की तरह सार-सम्भाल करता हो।

इधर दमयन्ती यानि गुण और रूप का दिव्य संगम। अहं और मम भाव से दूर दमयन्ती की कीर्ति चारों ओर छा गयी।

इधर नल का अनुज कुबेर। वीर, साहसी पर कपटी और तिकड़मबाज।

उसकी आँखों में राजा-रानी की प्रशंसा कांटें की भाँति चुभने लगी। कैसे इस राज्य पर अधिकार जमाते हुए नल की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दी जाये।

यद्यपि नल सद्गुणों की जीवन्त प्रतिमा था पर कोई न कोई अवगुण छद्मस्थ में होता ही है। इसी न्याय के अनुसार नल द्यूतक्रीड़ा के परम विलासी थे।

महाराज! कुबेर का प्रणाम स्वीकारें।

कैसी बातें कर रहा है तूं । भाई भाई में भी कोई राजा-प्रजा का व्यवहार होता है? आगे से ऐसा बोला तो अपना सम्बन्ध समाप्त। समझे।

क्षमा करें बड़े भैया! मैं सोच रहा था कि बहुत दिनों से आपके साथ शतरंज नहीं खेला। आज इच्छा हुई तो चला आया।

अच्छा किया। देखते-देखते शतरंज बिछी और दोनों भाई शतरंज खेलने में मस्त हो गये।

सरल हृदयी नल क्या जाने कि जो अनुज आँखों में प्रेम सजाये रखता है, उसमें जहर के कितने कीटाणु घुले हुए हैं।

इधर कुबेर जानता था कि धनबल और सैन्य बल के अभाव में रणभूमि में उतरना मात्र मूर्खता होगी। नल को द्यूतक्रीड़ा अतिप्रिय है। क्यों न उनकी इस कमजोरी का लाभ उठाया जाये।

धीरे-धीरे नल शतरंज के इतने विलासी बने कि अपना अधिकांश समय उसी में ही बिताने लगे।

और एक दिन....

आओ कुबेर ! अपने मानस-विनोद का समय हो चुका है। चलो। क्रीड़ा का प्रारम्भ करें।

नहीं....नहीं.... भैया! ऐसे रूखा-सूखा खेलने में क्या आनंद। योंहि हाथ घीसना अर्थहीन नहीं तो और क्या है?

मैं नहीं समझा!

भैया! स्पष्ट है कि बाजी पर कुछ लगाये बिना खेल का पूरा मजा नहीं आ सकता। आज से यदि शतरंज बिछेगी तो हार-जीत की शर्त पर बिछेगी अन्यथा नहीं। कुबेर ने जैसे अपना अन्तिम फैसला सुना दिया।

'हँस क्या जाने बगुले की चाल।' नल ने भी सोचा-ठीक ही तो कह रहा है कुबेर।

भद्र परिणामी नल कुबेर की चालबाजी नहीं जानता था । वह हार-जीत की बात नहीं कर रहा, अपितु कपटपूर्वक राज्य को हथियाना चाहता है। उसने शर्त को स्वीकार कर लिया।

दमयन्ती द्वारा पतिदेव के साथ वनवास-गमन का कथन

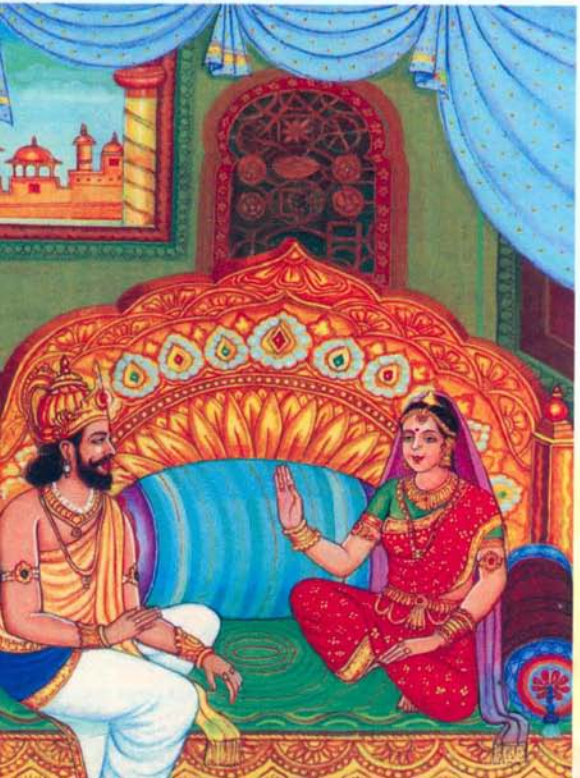

कुबेर को उस भोर की प्रतीक्षा थी, जब सम्पूर्ण साम्राज्य उसका अपना होगा।

दूसरे ही दिन शतरंज बिछी।

कुबेर ने योजना पर अमल करना शुरू किया यानि पहले हारना फिर हराना।

अरे भाई ! तूं तो शतरंज का खिलाड़ी और पराजय।

कुबेर हँसता हुआ बोला-लगता है इतने दिनों में आपने काफी दाँव-पेच सीख लिये हैं।

धीरे-धीरे कुबेर ने रहस्यमयी चालें चलनी प्रारम्भ की।

नल ने सबसे पहले दाँव पर लगाये-राज्य की दक्षिण दिशा में स्थित दस गाँव। देखते-देखते हार गये।

कुबेर! ये दस गाँव तुम्हारे हुए। अब उत्तर दिशावर्ती पचास गाँव।

कुबेर शतरंज में अत्यन्त शातिर! वह फिर जीत गया।

लो भाई ! ये पचास गाँव भी तुम्हारे हुए।

द्यूतक्रीड़ा में आसक्त बने महाराज राज्य और स्वयं का भविष्य भूला बैठे।

अन्त में वह स्थिति भी आ गयी, जब नल सब कुछ हारकर बन गये याचक और कुबेर साम्राज्य का सम्राट् ।

खेल समाप्त! मैंने जो चाहा था, वह यों अनायास ही प्राप्त हो जायेगा, यह सोचकर कुबेर स्वयं आश्चर्य में था।

देव ! जब यह राज्य हमारा नहीं रहा तो हमारा धर्म यही कहता है कि हम महल के सुखों का परित्याग कर अरण्यवास करें।

दमयन्ती ! तुम मेरे साथ कैसे विघ्नों को जीत पाओगी?

तेरे पाँवों में छाले पड़ेंगे। न रहने को महल होगा, न सोने को मखमली शय्या। तुम कोमल हो प्रिये! मेरी मानो, पिता के घर चली जाओ।

नहीं....नहीं....! ऐसा कहकर मेरे प्रेम को अपमानित न करो प्राणनाथ! आपका पथ मेरा नन्दनवन है। आपकी आँखों की छाया तले मैं कहीं भी दिन काट लूंगी पर मुझे अपने से अलग न करो आर्यपुत्र! कहते हुए दमयन्ती फफक पड़ी।

पूरे नगर में हाहाकार मचा हुआ था। आँसूओं से जैसे भूतल का अभिषेक हो रहा था।

हमारे प्राणप्रिय राजा और वनवास का स्वीकरण।

दोनों महल से निकले।

नल ने कहा–मेरे प्रिय प्रजाजनों! किसी का जीवन कभी भी एक सा नहीं होता। सुख और दुःख, धूप और छाँव

जीवन के अभिन्न हिस्से हैं। प्रज्ञाशील सुख में न लीन होता है,न दु:ख में दीन बनता है। मैं जा रहा हूँ। कुबेर को भी वही सम्मान और प्रेम देना जो मुझे दिया। मैं तुम सभी का हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ। कभी भी चाहे-अनचाहे किसी का जरा भी दिल दु:खाया हो तो सादर क्षमायाचना। अलविदा!

कौन किसे दिलासा दे! हर आँख में आँसू थे।

नगर का कण-कण जैसे आज मूक रूदन कर रहा था। चीख उठी थी महल की दीवारें। मुझे खण्डहर बनाकर मत जाओ महाराज! पर नल कर्त्तव्यपालन में परम तत्पर था। वह चल पड़ा वन की कंटकाकीर्ण डगर पर और छाया की तरह साथ थी दमयन्ती।

राजसुखों में पली राजकुमारी आज कंटीली, पथरीली वन-वीथियों पर पति का अनुसरण करती हुई चल रही थी।

वास्तव में कर्म की गति न्यारी है। वह एक पल में रंक को राजा और राजा को भिखारी बना देता है।

अभाव और दु:ख उसके एक रोम में भी नहीं था। वह सन्तुष्ट और सुखी थी दु:ख के कातिल अंधेरों में भी।

शाम ढलने से पहले दोनों ने फलाहार कर क्षुधा शान्त की।

एक ओर वन्य प्राणियों का भय और दूसरी ओर निशा का घना अंधेरा।

दोनों एक वृक्ष तले रूके। दमयन्ती थककर चूर-चूर हो गयी थी। कुछ पलों में ही वह निद्राधीन हो गयी पर नल की आँखों में दूर-दूर तक नींद नहीं थी।

वह चिन्तनरत था-

यह सब मेरे कृतकर्मों का परिणाम है। मैं तो सह लूंगा। पर दमयन्ती कैसे झेल पायेगी इन कष्टों को। उसकी कमनीय कोमल काया....मखमल जैसे कोमल पाँव....। यद्यपि वह मुझे छोड़ना चाहती पर मुझसे इसका दु:ख देखा नहीं जाता।

आखिर मुझे ही इसे छोड़कर चलना होगा। वह उठा और कुछ ही कदम आगे बढ़ाये होंगे कि सोचने लगा-अरे ! मुझे अपने पास नहीं पाकर इसकी अवस्था शोचनीय नहीं हो जायेगी! वह पुनः लौटा। उसके माथे पर हाथ फिराने लगा-नित प्रसन्नता से खिला-खिला रहने वाला मुखकमल विहार के श्रम से म्लान हुआ जा रहा था। नल के आँसू रोके नहीं रुके। आखिर मन को कठोर किया।

दमयन्ती! मुझे माफ कर देना। वह उठ खड़ा हुआ और पास पड़े पाषाण खण्ड पर लिख दिया-दमी! यहाँ से बायीं तरफ वाला मार्ग तुम्हारे पिता की चौखट तक जाता है।

मुझे ढूंढ़ने का उपक्रम न करना दमी! अपने पिता के पास चली जाना। जब भाग्य अनुकूल होगा, तब फिर मिलेंगे। भरे गले और भारी पाँवों से नल वन की अनजानी राहों पर अकेला चल पड़ा।

एकाकी दमयन्ती द्वारा वनवीथियों पर विचरण

दमयन्ती गहरी नींद में थी।

दु:खी मनुष्य निद्राधीन होकर दु:ख से कुछ पलों के लिये मुक्ति पा लेता है पर मस्तिष्क निद्राधीन नहीं होता। वह तो दु:ख....तनाव और पीड़ाओं के चक्कर काटता रहता है। स्वच्छ आकाश....चाँद की चाँदनी से भीगा अवनितल और ढलती रात्रि में अचानक दमयन्ती ने एक भयानक स्वप्न देखा।

उसने देखा-वह एक विशाल वृक्ष पर बैठी हुई है। इतने में चिंघाड़ता हुआ पागल हाथी आया है और वृक्ष को समूल नष्ट कर दिया है। वह नीचे गिर पड़ी है। वह तुरन्त उठी और कांपती हुई नल को पुकारने लगी।

उसने चारों ओर नजर डाली पर नल कहीं भी न था। उसका रोम-रोम कांप उठा-अरे! किसी वन्य प्राणी ने......... नहीं....नहीं....ऐसा नहीं हो सकता।

उषा का आगमन हो चुका था और 'प्रियवर! कहाँ हो, जल्दी आओ।' रोती-चिल्लाती रही वह नल....नल.... पुकार रही थी।

कंटीली झाड़ियों में देखा।

आसपास की पगडंडियों पर खोजा।

नल को कहीं भी न पाकर दमयन्ती अत्यन्त उदास हो बैठी-बैठी नवकार का जाप करने लगी। अचानक उसकी नजर उस शिला पर पड़ी, जिस पर नल दमयन्ती के लिये सन्देश छोड़ गया था। सन्देश पढ़ते ही दमयन्ती बेसुध हो जमीन पर गिर पड़ी।

थोड़ी देर में जब होश में आयी तब जलविहीन मीन की भाँति कल्पान्त आक्रन्दन करने लगी। वहाँ न तो कोई आँसू पोंछने वाला था, न सान्त्वना देने वाला था।

आंचल से आँसूओं को पोंछती हुई वह कुण्डिनपुर की ओर चल पड़ी।

इधर नल अविश्रान्त चला जा रहा था। यकायक उसके कानों से आवाज टकरायी-नल! मेरी रक्षा करो! मुझे इस अग्नि से बचा लो। अपना नाम घोर अरण्य में सुन नल ने वही रूककर देखा पर उसे कोई भी नजर न आया।

तभी उसने देखा कि कुछ ही दूरी पर कंटीली झाड़ियों की अग्नि के मध्य बैठा एक नागेन्द्र रक्षण के लिये पुकार रहा है।

नल दयार्द्र हो उठा। तत्क्षण उसने नाग को बचा लिया। वह उसे सुरक्षित स्थान पर छोड़कर जाने लगा कि सर्पराज उछला और नल को कसकर डस लिया।

देखते देखते नल भील की तरह विद्रूप होकर रह गये। कूबड़ा शरीर और कोयल जैसा काला वर्ण। उनके मुख से

अनायास ही निकल पड़ा-क्या परोपकार का यही फल जिनेश्वरों ने फरमाया है!

तभी एक चमत्कार घटित हुआ। सर्प अदृश्य हुआ और एक दिव्य आकृति प्रकट हुई-नल! मैं तेरा पिता निषध हूँ। यद्यपि तेरा जीवन सदाचार की सुगंध से सुवासित है पर पुत्र! कृतकर्मों का परिणाम भोगे बिना मुक्ति कहाँ?

पर यह विद्रूप काया। कूबड़े-सी हास्यास्पद स्थिति। ऐसा क्यों किया पिताश्री!

पुत्र! तेरा संकट काल सम्पूर्ण बारह वर्षों का है। इन वर्षों में कोई भी तेरा अहित न करें, इसलिये मैंने तुझे कूबड़ा बनाया है।

पुत्र! ये श्रीफल और करण्डक ग्रहण कर।

जब कभी वास्तविक रूप में आना हो तो श्रीफल में से आभूषण और करण्डक में वस्त्र निकालकर धारण कर लेना। उससे तूं मूलरूप में आ जायेगा। इतना कहकर देव अन्तर्धान हो गया।

नमस्कार मंत्र को हृदय में धारण करता हुआ नल उसी रूप में सिंहसुमार नगर की ओर चल पड़ा। वह जैसे ही नगर में प्रविष्ट होने लगा, उसे मुख्य नगर द्वार पर ही रोक दिया।

क्या बात है भैया! यह प्रतिबन्ध कैसा?

नगर में एक उन्मत्त गजराज बंधनशृंखला को तोड़कर उत्पात मचा रहा है।

तभी उसने सुना-

सुनो ! सुनो ! सुनो !

महाराजा दधिपर्ण की आज्ञा है कि जो कोई व्यक्ति इस महाकाय गजराज को वश में कर लेगा, उसे महान् पुरस्कार दिया जायेगा।

गजवशीकरण और अश्व विद्या में कुशल महाराजा नल

पर विशालकाय....उन्मत्त गजराज को वश में करने का अर्थ यमराज को गले लगाना था। उसके सामने जाना मानो आत्म-हत्या करने जैसी बालचेष्टा थी।

कुबड़े शरीर में स्थित नल ने उस घोषणा को झेल लिया।

यद्यपि नल गज-वशीकरण-विद्या में प्रवीण था पर वह गजराज भी कोई सामान्य नहीं था।

उसकी दिल दहला देने वाली भयंकर चिंघाड़ सुनकर भी नल का मनोबल कमजोर नहीं पड़ा।

जैसे ही नल को देखा, गजराज उस पर झपट पड़ा पर नल तो पहले से ही सावधान था, वह एक ओर हो गया। फिर तो कभी आगे, कभी पीछे होकर उसे छकाने लगा और जैसे ही अवसर मिला, उछलकर उसकी पीठ पर जा बैठा और कुम्भस्थल पर जोर का प्रहार किया कि गजराज शांत हो गया।

एक कूबड़े ने गजराज को वश में कर लिया। यह देखकर क्या राजा, क्या प्रजा, सभी आश्चर्य से अभिभूत हो उठे।

उचित पुरस्कार और सम्मान के बाद राजा ने पूछा-महाशय ! मैं आपका परिचय जानने को उत्सुक हूँ। आप कौन है? कहाँ से आये हैं?

नल ने अपना वास्तविक परिचय देना उचित नहीं समझा।

महाराज! मैं सम्राट् नल का पाचक हूँ। द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद महाराज नल और महारानी दमयन्ती नगर को छोड़ वनों में चले गये हैं।

मैं असहाय यहाँ आया हूँ। आप यदि मुझे अपने पास रखे तो बड़ी कृपा होगी। मैं आपको स्वादिष्ट और उत्कृष्ट व्यंजन बनाकर खिलाऊंगा।

कूबड़े की मधुरता और विनम्रता से दधिपर्ण प्रभावित हुए बिना नहीं रहे और उसे अपने यहाँ रख लिया। वह सूर्यपाक विद्या के द्वारा विविध रसवंती प्रस्तुत कर राजा को खिलाता और राज-प्रसाद को प्राप्त करता।

इधर दमयन्ती 'चत्तारि मंगलम्' पर श्रद्धा धरती हुई विकट मार्ग पर निरूपाय एकाकी चली जा रही थी।

बिहावना जंगल....हिंस्र पशुओं की भयावनी आवाजें....दुर्गम राहें....तथापि उसका धैर्य बरकरार था।

रास्ते में एक सार्थवाह मिला। वह भी भद्रपरिणामी....धार्मिक और सदाचारी। दमयन्ती उनके साथ हो चली।

एक बार डाकू राह में पड़ गये। सार्थवाह डर गया पर दमयन्ती ने उन्हें ललकारा।

उसकी आवाज में रौब और निर्भयता देखी तो डाकू भी घबराये। उसके पवित्र सतीत्व के प्रभाव वे अकृत्य से पीछे हट गये।

बहिन! तुमने आज मेरी रक्षा की है। मेरा आग्रह है-तुम मेरे साथ चलो। एकाकी कहाँ जाओगी? सार्थवाह ने दमयन्ती से कहा।

भैया! जहाँ भाग्य ले जायेगा। उसने मधुर स्वरों से स्पष्ट इंकार कर दिया और गन्तव्य की ओर बढ़ चली।

कदम-कदम पर कष्ट थे पर सिद्धचक्र को हृदय में प्रतिष्ठित कर वह चली जा रही थी।

इतने में....हा! हा! हा! आज मैं तुम्हें खाकर अपनी क्षुधापूर्ति करूँगा। उस राक्षस की विशाल काया.... आँखों में तैरती क्रोधाग्नि। उदरस्थ करने को आतुर लम्बी जीभ। वह राक्षस कई दिनों से क्षुधार्त्त था। पलभर के लिये दमयन्ती सकपकायी पर नवकार मंत्र पर उसे पक्का भरोसा था।

वह बोली–हे असुराधिपति! तूं मुझे खाना चाहता है, कोई बात नहीं। यदि मेरे शरीर से तेरी क्षुधा शांत होती है तो मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं हैं।

पर सोच! हिंसा के कटु परिणाम जब उदय में आयेंगे तब तेरा क्या होगा? पुनः पुनः दुःख के भारों को कंधों पर लादता हुआ जन्म-मरण की गलियों में भटकता रहेगा।

यदि तूं चाहता है कि तूं सुखी बने, तेरी सद्गति हो तो धर्म की शरण में आ। अहिंसा और अभयदान सर्वोच्च धर्म है। इससे तूं राक्षस से देव बन सकेगा। उच्चगति का बंध कर सकेगा।

दमयन्ती के शब्दों ने जादुई प्रभाव किया और वह राक्षस सचमुच बदल गया।

देवी ! तेरा उपकार मैं कभी नहीं चुका पाऊंगा। मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। जो चाहिये, वह मांग ले।

हे धर्मप्रिय! मुझे धन-सम्पदा की कोई जरूरत नहीं है। मैं तो बस इतना ही जानना चाहती हूँ कि मुझे मेरे पतिदेव के दर्शन कब होंगे?

देवी! बारह वर्षों के बाद तूं नल को प्राप्त करेगी और पुनः राजरानी के पद से शोभित होगी। प्रतिबोध को प्राप्त कर राक्षस चला गया।

गर्जता हुआ सिंह....भूखा व्याघ्र....फफुंकारता हुआ सांप, अनेक हिंसक पशु रास्ते में आये पर दमयन्ती के महासतीत्व और तत्त्व-श्रद्धा के अपूर्व प्रभाव से किसी ने भी उसका अहित नहीं किया।

महलों की रानी आज एकाकिनी थी । उसे न नल पर रोष था, न कुबेर पर!

'ओह! यह संसार दुःखमय ही है। मेरे अशुभ कर्मों का ही यह कटु परिणाम है। दोष मेरा, मेरे कर्मों का है।' चिंतन करती हुई दमयन्ती कभी परमात्मा के ध्यान में लीन होती तो कभी कर्मों की विकटता की अनुप्रेक्षा कर निर्वेद-रस से भीग जाती।

कष्टों के बीहड़ वन अभी कटे नहीं थे।

चातुर्मास की घड़ियाँ सामने थी। अचानक घनघोर काली घटाएँ बरसने लगी। अब तो दमयन्ती का चलना ही दुष्कर हो गया।

एक रात्रि वृक्ष के तले व्यतीत की पर वर्षा ऋतु का आगमन हो चुका था। फिर से झड़ी लगे, उससे पहले स्थान की गवैषणा करनी आवश्यक हो गयी।

पर भयानक अरण्य में सुरक्षित स्थान को प्राप्त करना भी एक विकट प्रश्न था।

यद्यपि महारानी आज असहाय थी फिर भी कदम-कदम पर पुण्य उसके साथ चल रहा था।

अकस्मात् पर्वतमालाओं के बीच स्थित एक गुफा उसके दृष्टि पथ में आयी। वह उस गुफा की ओर बढ़ी। अन्दर जाकर देखा तो पाया कि चातुर्मास-काल में यह स्थान उपयुक्त और सुरक्षित है।

इधर आस-पास रहने वाले तापस भी वर्षाकाल-यापन के लिये उस गुफा में आ गये।

दमयन्ती के तत्त्वज्ञान, विशुद्ध चारित्र और उसकी पवित्र जीवन चर्या से वे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। दमयन्ती ने उन्हें जिनधर्म का मर्म और निर्ग्रन्थ जीवन का सार समझाया। प्रतिबुद्ध हो वे सभी पांच सौ तापस अर्हत्प्रणीत जिनधर्म की उपासना में संलग्न हो गये।

उसी स्थल पर एक सुन्दर नगर की स्थापना हुई। वहाँ पांच सौ तापस प्रतिबुद्ध हो श्रावक बने, इसलिये उस स्थान का नाम तापसपुर रखा गया।

एकदा सूरिवर का दिव्य सानिध्य प्राप्त कर दमयंती ने पूछा-भंते! मुझे किस कारण बारह वर्षों का पति वियोग सहन करना पड़ रहा है? यह किस भव के कर्मों का दुष्परिणाम है?

सूरिवर ने कहा-महासती! घटना पूर्व भव की है। ममण नामक राजा के वीरमति नामक रानी थी। एक बार वे ग्रामान्तर जा रहे थे कि सामने से मुण्डित मुनि आते हुए दिखाई दिये। कृशकाया....मेले कुचेले वस्त्र...!

अरे! ये मुनि! इनका तो दर्शन करना ही पाप है। द्वेष से भरकर राजा बोला। राजाज्ञा से उन्हें बंदी बना लिया गया।

रानी ने भी इसे अपशकुन माना। बारह घण्टे तक कोई सुनवाई नहीं हुई। जब राजा-रानी को अपनी गलती का बोध हुआ तब क्षमायाचना की। पर कोप और अनादर के कारण अशाता एवं अन्तराय कर्म का बंध हुआ।

बहुत समय के बाद जिनप्ररूपित धर्म का उपदेश सुनकर वह ममण राजा जैन धर्मी बना। वे राजा-रानी ही राजा नल और रानी दमयन्ती बने। उसी कर्मोदय से तुम्हें बारह वर्षों का पति विरह सहना पड़ रहा है।

दमयन्ती पूर्वकृत पाप की आलोचना करती हुई चलते चलते अचलपुर नगर में आ पहुँची। सम्राट् ऋतुपर्ण की पत्नी महारानी चन्द्रयशा दमयन्ती के रिश्ते में मौसी लगती थी।

वह राजमहल में पहुँची पर महारानी उसे पहचान न सकी। अंधेरे में तो खुद की छाया भी साथ छोड़ देती है। महारानी उसकी पवित्रता और विनम्रता से प्रभावित हुए बिना नहीं रही।

उसने पूछा-भद्रे! तुम कौन हो? कहाँ से आयी हो? दमयन्ती ने इस स्थिति में अपना परिचय देना उचित नहीं समझा।

महारानी जी! मैं एक दासी हूँ। मेरे योग्य कोई काम हो तो प्रदान कीजिये।

रानी ने कहा-तूं क्या जानती है?

दमयन्ती बोली-आप जो भी कहेंगी, वह मैं कर लूंगी।

महासती की पहचान सुन्दर वस्त्रभूषण से नहीं, उसकी भाषा, व्यवहार और जीवन होती है। दमयन्ती के गुणों की

दमक छन-छन कर बाहर छलक रही थी, जिससे महारानी उसके प्रति आकृष्ट हो गयी।

मुसीबत की मारी यह नारी उच्च घराने और प्रतिष्ठित कुल की प्रतीत होती है। इसका इष्ट-मिष्ट व्यवहार और सुन्दर आचार इसका साक्षात् प्रमाण है। महारानी ने उसे दानशाला में नियुक्त कर दिया।

दमयन्ती आने-जाने वाले अतिथियों को दान देती, साथ ही साथ पतिदेव का पता लगाने का भी प्रयास करती।

रोज सूर्य आशाओं के साथ उगता और निराशा के साथ अस्त हो जाता। नल दधिपर्ण राजा के वहाँ पाचक बनकर दिन काट रहा था और दमयन्ती ऋतुपर्ण राजा की दानशाला के कार्य में संलग्न थी।

एक दिन कुण्डिनपुर का एक ब्राह्मण दानशाला में पहुँचा।

उसने ज्योंहि दमयन्ती को देखा, तुरन्त पहचान गया।

अरे देवी! आप यहाँ!

दमयन्ती भी उसे पहचान गयी थी।

विप्रवर्य ! कैसे? पिताश्री स्वस्थ-प्रसन्न तो है न?

ब्राह्मण बोला-राजकुमारी जी! उन्होंने आपकी कहाँ कहाँ खोज नहीं करवायी। जंगल, गाँव, नगर, धर्मशाला, पर कहीं भी पता नहीं चल पाने से वे अत्यन्त निराश हैं। दिन-रात तुम्हारी चिंता में ही कटते हैं।

जब रानी को यह पता चला कि दानशाला में मैंने जिसे रखा है, वह दासी नहीं अपितु दमयन्ती है। पश्चात्ताप करती हुई वह दौड़ी दौड़ी दमयन्ती के पास पहुँची।

बेटी! मैं तुझे पहचान न सकी। मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी पर दमी! तूंने यदि अपना परिचय बता दिया होता तो मैं अपराध से बच जाती।

दमयन्ती ने कहा–मौसी! यह सब कर्मों का लेखा–जोखा है। भूल मुझसे या आपसे हो सकती है पर कर्म से नहीं।

फिर पतिदेव वनों के कष्टों में दिन काटे और मैं महलों की सुखद छाया में मौज मनाऊँ, यह भी सम्भव नहीं।

न जाने वे कहाँ, किस हाल में होंगे? मुझे तो उनकी ही चिंता खाये जाती है। कहते–कहते दमयन्ती की आँखें भर आयी।

दमयन्ती! देखो इस तरह हिम्मत न हारो। सारे दिन हर किसी के एक जैसे नहीं होते।

धीरज बंधाती हुई महारानी ने कहा–मेरा मन कहता है कि अब तेरे दुःख के दिन पूरे हुए। शीघ्र ही सम्राट् नल से तेरा मिलन होने वाला है।

कुछ दिन महलों में व्यतीत कर दमयन्ती कुण्डिनपुर माता–पिता के पास चली आयी। उसकी दयनीय दशा देखकर वे भावुक हो उठे। पर कर्म–राजा के आगे वे भी बेबस और लाचार थे।

राजा नल की खोज जारी थी पर कहीं पर पता नहीं चल पा रहा था।

दमयन्ती का तो एक–एक दिन जैसे युग बन गया था।

महाराज भीम आने वाले हर व्यापारी से सर्वप्रथम राजा नल के बारे में पूछते थे। सिंसुमारपुर के एक व्यापारी से पूछने पर पता चला कि महाराज नल को तो कहीं नहीं देखा पर हमारे महाराजा दधिपर्ण के यहाँ एक रसोईयाँ काम करता है, वह अपने आपको महाराज नल का रसोईयाँ बताता है।

वह शरीर से कुबड़ा और रंग का काला है पर है बड़ा गुणवान् और साहसी। वह गजदमनी विद्या के साथ सूर्यपाक कला भी जानता है। अपनी इन कलाओं से वह महाराज का ही नहीं, प्रजा का भी प्रिय पात्र हो गया है।

दमयन्ती समझ गयी–हो न हो, ये सम्राट् नल ही हैं, जो वेश बदल कर वहाँ रह रहे हैं।

उसने कहा-पिताजी! मुझे विश्वास है कि वह रसोईयाँ महाराज नल ही हैं क्योंकि उनके अतिरिक्त कोई भी इन दो विद्याओं का ज्ञाता नहीं है। बहुत सम्भव है कि रूप परावर्तिनी विद्या के माध्यम से उन्होंने अपना आकार बदल दिया हो।

राजा भीमदेव को भी पता था कि महाराज नल अश्व विद्या में भी पारंगत है। इस परीक्षा के बाद वह रसोईयाँ नल ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं रहेगा।

विधिवत् योजनानुसार उन्होंने दमयन्ती के स्वयंवर की आमन्त्रण पत्रिका महाराज दधिपर्ण के नाम लिखी और दूत से कहा कि तुम्हें निश्चित तिथि से ठीक एक दिन ही पहले पहुँचना है। क्योंकि यदि वह रसोईयाँ महाराज नल होंगे तो अश्व विद्या द्वारा महाराज भीम को एक दिन में ही यहाँ पहुँचा देंगे।

'दमयन्ती का कल स्वयंवर रचा जा रहा है। आप पधारने का अनुग्रह करावें।'

महाराजा दधिपर्ण ने पहले भी दमयन्ती को महारानी बनाना चाहा था पर बाजी नल के पक्ष में चली गयी थी। अब तो उनकी धड़कनें दमयन्ती की प्रतीक्षा में तेज हो गयी पर एक दिन में कुण्डिनपुर पहुँचना भी कैसे?

दधिपर्ण के चेहरे पर छायी निराशा को नल ने आसानी से पढ़ लिया।

राजन्! आप निश्चिन्त रहिये। अश्व विद्या से मैं आपको नियत समय पर कुण्डिनपुर पहुँचा दूंगा।

यह सुनकर दधिपर्ण आनन्द से भर उठा।

सुसज्ज रथ पर बैठते ही अश्व हवा से बातें करने लगे! दोनों समय पर कुण्डिनपुर में आ पहुँचे पर दधिपर्ण के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

नगर में न तो स्वयंवर की तैयारियाँ हो रही थी, न किसी प्रकार की चहल-पहल थी।

राजा भीम ने दधिपर्ण का उल्लासपूर्ण स्वागत किया। कूबड़े को देख मन ही मन राजा भीम की खुशी का ठिकाना न रहा क्योंकि संशय दूर जो हो चुका था। फिर सूर्यपाक भोजन भी तैयार करवाया, जिस कला में एकमात्र नल ही पारंगत था।

राजा भीम ने उचित समय पर अपने महल में बुलाया और कहा-सूर्यपाक भोजन, गजदमनी विद्या और अश्व विद्या, ये तीनों गुण आप में बखूबी पाये गये हैं इसलिये महापुरुष! अब हमें पूर्ण विश्वास है कि आप ही महाराज नल है। शीघ्र ही वास्तविक रूप धारण कर हमें कृतार्थ कीजिये।

कुबड़े ने कहा-राजन्! आप भी कैसी हास्यास्पद बात कर रहे हैं। कहाँ गुणवान्, स्वरूपवान् राजा नल, कहाँ मैं विद्रूप कूबड़ा! कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली।

अवश्य ही आपको कोई भ्रम हुआ है, जिस कारण आप मुझे राजा नल समझ बैठे हैं।

नहीं राजन्! यथोचित परीक्षा लेने के बाद ही हम निर्णय पर आये हैं कि आप ही राजा नल है क्योंकि इन तीनों विद्याओं में एक मात्र आप ही निपुण हैं। रही विद्रूपता और कूबड़ेपन की बात। यह तो आपके हाथ की बात है।

अब शीघ्र ही यथार्थ रूप धारण कीजिये। क्या आपको हमारी दयनीय दशा पर तरस नहीं आता। कहते हुए राजा भीम रो पड़े।

नल ने तुरन्त विद्या के बल से अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया, जिसे देख राजा भीम प्रसन्न हो उठे।

दमयन्ती बारह वर्षों के वियोग के बाद पति को पाकर पुलकित हो उठी। आनंद के अश्रुओं से उसकी आँखें छलक आयी। पत्नी के लिये पति से ज्यादा अनमोल क्या हो सकता है।

पूरे नगर में खुशी की लहर छा गयी।

राजा दधिपर्ण को जब यह पता चला तो शर्म-संकोच से भरकर वे पुनः पुनः क्षमायाचना करने लगे। नल ने उन्हें अपनी बाहों में भर लिया।

इस प्रकार धर्म और प्रेम का आनंद से जीते हुए दधिपर्ण और ससुर भीम की सहायता से नल पुनः अयोध्या का अधिपति बना।

एक बार दमयन्ती के महलों में स्वर्ण-रत्न की वृष्टि होने लगी। नल ही नहीं, पूरी प्रजा अचरज से भर गयी। जल-वर्षा तो हमने देखी है पर स्वर्ण-वर्षा! अद्‌भुत चमत्कार! देखते-देखते एक दिव्य आकृति दमयन्ती के समक्ष प्रकट हुई और वह देव कहने लगा-हे सती शिरोमणे! हे देवि! मुझ तापस को तूंने प्रतिबोध देकर जैनत्व का दान दिया था। क्रमशः द्वादश व्रत और पंच महाव्रत की उत्तम आराधनापूर्वक सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में केसर नामक देव बना हूँ। महासती यह सब आपकी दिव्यदयामय दृष्टि का ही परिणाम है। पुनः पुनः कृतज्ञता अभिव्यक्त करके वह देव अन्तर्धान हो गया।

सम्पूर्ण नगर में दमयन्ती के सतीत्व और अनुपम तत्त्व-श्रद्धा की प्रशंसा होने लगी।

सुख, शान्ति और सम्मान के दिन बीते जा रहे थे। सुख के पल छोटे ही लगते हैं पर नल और दमयन्ती की धर्म-श्रद्धा और अधिक दृढ़ होती जा रही थीं।

और एक दिन....

हे नल! मैं तेरा पिता निषध हूँ।

यह राज्य-साम्राज्य नरक गति का रास्ता है। संयम ग्रहण करके सद्‌गति का सर्जन करने का अब समय आ गया है।

शिवास्तु ते पन्थानः।

पुत्र पुष्कार को सिंहासन आरूढ़ कर नल-दमयन्ती के साथ शाश्वत पथ की ओर चल पड़ा। दोनों घोर-कठोर चारित्र की साधना कर अनशनपूर्वक स्वर्ग में गये। राजा नल कुबेर नामक देव बना तथा दमयन्ती उसकी देवी बनी।

श्रुत संरक्षक

- श्री जैन श्वेताम्बर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादावाडी संघ, इचलकरंजी
- श्री जिनहरि विहार ट्रस्ट, पालीताना
- पूजनीया प्रवर्तिनी श्री प्रमोदश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से श्री जिनकुशलसूरि सेवाश्रम संस्थान, कुशल वाटिका, बाडमेर
- श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी ट्रस्ट, बसवनगुडी, बैंगलोर
- पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री मुनिसुव्रतस्वामी जैन देरासर एवं दादावाडी ट्रस्ट, कान्ति मणि विहार, आडगांव–नाशिक
- श्री भूरचंदजी प्रकाशचंदजी चंपालालजी जितेन्द्रकुमारजी मोहित आशिष दिव्यांश धारीवाल, चौहटन–बाडमेर
- मातुश्री मोहिनीदेवी ध.प. सूरजमलजी छाजेड की प्रेरणा से सौ. कांतादेवी जगदीशचंदजी, खुशबू नितेशकुमार, सौरभ छाजेड परिवार, हरसाणी– इचलकरंजी
- मातुश्री पिस्तादेवी के आशीर्वाद से श्री ऋषभलालजी मांगीलालजी केसरीमलजी अमृतलाल अभयकुमार बेटा पोता छगनलालजी छाजेड, सिवाना–इचलकरंजी– पाली
- मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. श्री पीरचंदजी वडेरा की स्मृति में श्री बाबूलालजी किशनलालजी चम्पालालजी भूरचंदजी गौतमचंदजी वडेरा परिवार, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
- श्री आशारामजी वख्तावरमलजी खेमचंदजी लालचंदजी सुरेशकुमारजी सचिनकुमारजी मयूरकुमारजी नाहटा, सिवाना–इचलकरंजी–नागपुर
- स्व. मातुश्री परमेश्वरीदेवी स्व. पिताश्री सुल्तानमलजी बोहरा की पावन स्मृति में घेवरचंदजी ओमप्रकाशजी अशोककुमारजी सुरेशकुमारजी दिनेशकुमारजी रतनपुरा बोहरा भियाड वाले, बाडमेर–इचलकरंजी
- मातुश्री सुकीदेवी देरामचंदजी की प्रेरणा से दीपचंदजी नेमीचंदजी शांतिलालजी मगराजजी रमेशकुमारजी भंसाली, समदडी–इचलकरंजी–सूरत
- मातुश्री श्रीमती देवी ध.प. श्री रिखबदासजी छाजेड की प्रेरणा से अशोककुमार परमेश्वरीदेवी पवनकुमार रितिककुमार दर्शनकुमार छाजेड बाडमेर– इचलकरंजी
- श्रीमती भंवरीदेवी नेमीचंदजी की प्रेरणा से श्री जगदीशचंदजी संपतराजजी रमेशचंदजी जसराजजी बाबुलालजी छाजेड, बाडमेर–इचलकरंजी
- मातुश्री स्व. मोहनीदेवी ध.प. स्व. श्री राणामलजी मेहता की स्मृति में बाबुलालजी भूरचंदजी सम्पतराजजी मांगीलाल सवाई अंकित मेहता, बाडमेर–इचलकरंजी–मालेगांव
- श्रीमती पारसीबाई रतनचंदजी सौ. किरणबाई प्रकाशचंदजी सचिन जिनेश समृद्ध चौपडा बिलाडा वाले, हैदराबाद
- संघवी श्री माणकचंदजी सौ. सुशीलादेवी पुत्र अरूणकुमार सौ. कवितादेवी विवेककुमार सौ. डिम्पलदेवी पुत्र पौत्र श्री वरदीचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी–अहमदाबाद
- श्री देवीचंदजी रतनलालजी छोगालालजी नरेशकुमार मुकेशकुमार कपिलकुमार विकासकुमार वडेरा, बाडमेर–इचलकरंजी
- मातुश्री स्व. बबरीदेवी ध.प.केसरीमलजी की पुण्य स्मृति में मातुश्री ढ़ेलीदेवी ध.प. स्व. शिवलालचंदजी की प्रेरणा से पुत्र बाबुलालजी ओमप्रकाशजी पारसमलजी छाजेड {कवास वाले} बाडमेर–इचलकरंजी
- श्री भंवरलालजी सौ. सुआदेवी पुत्र ओमप्रकाश सौ. सुमित्रादेवी अशोककुमार सौ. संगीतादेवी बेटा पोता श्री विरधीचंदजी छाजेड, बाडमेर–मुंबई
- स्व. श्रीमती पानीबाई लक्ष्मीचंदजी स्व. श्रीमती पवनबाई मांगीलालजी श्रीमती डाली हेमन्तजी श्रीमती अर्चना संदीपजी परमार, कोयम्बतूर–बाली
- सांचोर निवासी बोहरा पारसमलजी हंजारीमलजी पुत्र श्री बाबुलालजी घेवरचंदजी मोतीलालजी, विनस मेटल कॉर्पो. मुंबई
- स्व. जावंतराजजी हस्तीमलजी मांगीलालजी नरसिंहमलजी गौतम विक्रम हिदान बोहरा परिवार केरिया वाले, सांचोर– मुंबई
- मातुश्री ढेलीदेवी की स्मृति में शा. संपतराजजी लूणकरणजी समकित हिमांशु बेटा पोता माणकमलजी हीरालालजी रामजियांणी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी– मालेगांव

- भाई स्व. श्री हेमराजजी घेवरचंदजी, स्व. श्रीमती शांतिदेवी धर्मपत्नी श्री घमडीरामजी की स्मृति में मोतीलालजी पारसमलजी बेटा पोता प्रतापमलजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी–बैंगलोर
- श्री मीठालालजी सौ. पुष्पादेवी पुत्र महावीरकुमार अरूणकुमार पौत्र ध्रुव हर्ष चिराग लूंकड, गढसिवाना–इचलकरंजी
- पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. {बेबी म.} की पावन प्रेरणा से उनके चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री जैन संघ, गुलाबनगर, जोधपुर राज.
- श्री लहरचंद भाई शाह सौ. श्रीमती मधुबेन शाह मूल कच्छ वर्तमान उज्जैन निवासी श्री लहरचंदभाई के 75वर्ष पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में, गदग
- शा. पन्नालालजी गौतमचंदजी रतनचंदजी पारसचंदजी पुखराजजी धर्मचंदजी अशोककुमारजी कवाड परिवार फलोदी–तिरूपात्तूर
- श्री हिन्दुमलजी मटकादेवी पुत्र पुखराज सुरेशकुमार भरतकुमार नरेशकुमार बेटा पोता हमीरमलजी लूणिया धोरीमन्ना–चेन्नई
- शा. सुगनचंदजी राजेशकुमारजी संजय आनन्द अभिषेक अरिहंत बरडिया, ब्रह्मसर छबडा– चेन्नई
- पू. माताजी म. श्री रतनमालाश्रीजी म. के आशीर्वाद से पिताजी श्री भंवरलालजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती मोहिनी देवी पुत्र ललितकुमार राजकुमार कैलाशकुमार गौतमचंद संकलेचा रासोणी परिवार, पादरू–चेन्नई–हैदराबाद
- श्रीमती सुआदेवी पूनमचंदजी भवानीदेवी पुखराजजी राजेश सुरेश दिनेश छाजेड, पादरू–मुंबई–चेन्नई–दिल्ली
- शा. मुकनचंदजी तीजोदेवी, लूणचंद नरेन्द्रकुमार–स्नेहादेवी लक्ष्यकुमारी दिव्याकुमारी कवाड परिवार, पादरू–चेन्नई
- श्रीमती बदामीदेवी नेमीचंदजी, श्रीमती चन्द्रादेवी–राजेशकुमारजी सामिया रसिक सैहल कटारिया परिवार, पादरू–चेन्नई
- श्रीमती मथरादेवी हरखचंदजी गुलेच्छा की पुण्य स्मृति में श्रीमती पुष्पादेवी–मोहनलालजी अशोक भरत मुकेश गोलेच्छा परिवार, पादरू–विजयवाडा
- श्री शीतलनाथ भगवान एवं दादा श्री जिनकुशलसूरि ट्रस्ट, पादरू राज.
- श्री मदनलालजी राजेन्द्रकुमारजी विक्रमकुमार महेन्द्रकुमार मुकेश नरेश बेटा श्री रिकबचंदजी दांतेवाडिया, एस. आर. एस., मांडवला–चेन्नई
- शा. महेन्द्रकुमारजी राजेश–श्वेता, विनय–महिमा, ईशांत व जिनय कोठारी परिवार, फलोदी–चेन्नई
- शा. बाबुलालजी सौ. हंसाबेन, राकेश–ममता, तीर्थस तीर्था पुत्र पौत्र मणिलालजी डोसी, मंडार–चेन्नई
- संघवी अशोककुमारजी विनोदकुमारजी महावीरकुमारजी किरणकुमार श्रीपालकुमार विमलकुमार महिपाल रियांशवीर गोलेच्छा परिवार, जीवाणा–चेन्नई
- श्री चन्द्रप्रभु जैन श्वेताम्बर मंदिर, शूले, चेन्नई
- श्री संभवनाथ श्वेताम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, वडपलनी, चेन्नई
- शा. वीरेन्द्रमलजी–सौ. शांतादेवी, आशिष–दीपा, दर्शन बेटा पोता पारसमलजी सायरकंवर कोचर मेहता परिवार, जैतारण–चेन्नई
- शा. जवरीलाल पदमकुमार प्रवीणकुमार अनिकेत सिद्धार्थ टाटिया परिवार, टाटिया फाउण्डेशन, चेन्नई
- श्री तमिलनाडु खरतरगच्छ संघ, चेन्नई
- श्रीमती स्व. रूपीदेवी तोगमलजी की पुण्य स्मृति में श्रीमती कमलादेवी भीखचंदजी एवं श्रीमती दुर्गादेवी स्व. बाबुलालजी सागरोणी गोलेच्छा परिवार पादरू– हैदराबाद
- प. पू. कुलदीपिका साध्वीवर्या श्री विनयांजनाश्रीजी म.सा. के द्विवर्षीय वर्षीतप के पूर्णाहुति एवं प. पू. प्रियमंत्रांजनाश्रीजी म.सा. की बडी दीक्षा निमित्त स्व. मदनचंदजी बरडिया, चूले चेन्नई
- शा. सांकलचंदजी जगदीशकुमार अशोककुमार अमितकुमार सम्यक् बेटा पोता श्री बादरमलजी रासोणी संकलेचा, पादरू– हैदराबाद
- पूजनीया पार्श्वमणि तीर्थ प्रेरिका गुरुवर्या श्री सुलोचनाश्रीजी म.सा. तपोरत्ना श्री सुलक्षणाश्रीजी म.सा. की सुशिष्या पू. साध्वी श्री प्रियस्वर्णांजनाश्रीजी म. सा. आदि ठाणा 4 {चातुर्मास 2015} की प्रेरणा से श्री कुंथुनाथ जैन श्वेताम्बर मू.पू. संघ, सिन्धनूर {कर्णाटक}
- माताजी श्रीमती खम्मादेवी मिश्रीमलजी की प्रेरणा से शा. भूरचंदजी बाबुलालजी नेमीचंदजी गुलाबचंदजी जीरावला परिवार, जोधपुर–मुंबई–चेन्नई
- पू. महत्तरा साध्वी श्री चंपाश्रीजी म., पू. समता साधिका श्री जितेन्द्रश्रीजी म. की शिष्या पू. धवल यशस्वी श्री विमलप्रभाश्रीजी म. की आज्ञांकिता पू. साध्वी श्री विश्वरत्नाश्रीजी म. आदि की प्रेरणा से सन् 2015 के चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री शांति वल्लभ लुम्बिनी जैन संघ, चेन्नई के ज्ञान खाते से

* पू. महत्तरा साध्वी श्री चंपाश्रीजी म., पू. समता साधिका श्री जितेन्द्रश्रीजी म. की शिष्या पू. धवल यशस्वी श्री विमलप्रभाश्रीजी म. की पावन प्रेरणा से सन् 2015 के चातुर्मास के उपलक्ष्य में श्री जिनदत्तसूरि जैन मंडल एवं श्री धर्मनाथ जैन मंदिर के ज्ञान खाते से
* प. पू. पार्श्वमणि तीर्थ प्रेरिका गणिनी श्री सुलोचनाश्रीजी म. पू. तपोरत्ना श्री सुलक्षणाश्रीजी म. की पावन प्रेरणा से श्री जैन श्वे. पार्श्वमणि तीर्थ पेद्दतुम्बलम्, आदोनी
* श्री पार्श्व कुशल जैन सेवा ट्रस्ट, तिरूपुर
* पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री शासनप्रभाश्रीजी म. के शासन प्रभावक चातुर्मास सन् 2015 के उपलक्ष्य में उनकी प्रेरणा से श्री जैन श्वेताम्बर संघ, धमतरी छ.ग.
* पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री शासनप्रभाश्रीजी म. के शासन प्रभावक चातुर्मास सन् 2015 के उपलक्ष्य में उनकी प्रेरणा से श्री शांतिनाथ भगवान् जैन मंदिर ट्रस्ट, महासमुन्द छ.ग.
* पू. बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी डॉ. श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से श्रीमती पानीबाई आसकरणजी भंसाली की पुण्य स्मृति में श्री तिलोकचंदजी पौत्र ललितकुमार कमलचंद सुनीलकुमार सुरेशकुमार भंसाली परिवार, रायपुर छ.ग.
* स्व. श्रीमती हेमलताबाई गुलेच्छा की स्मृति में श्री संजयजी गुलेच्छा, रायपुर छ.ग.

श्रुत समाराधक

卐 पू. मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में शा. बाबुलालजी सौ. कमलादेवी पुत्र रमेशकुमार पौत्र मंथनकुमार लूंकड, मोकलसर– इचलकरंजी
卐 पू. खान्देश शिरोमणि गुरुवर्या श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री जैन श्वे. मू.पू. संघ जलगांव की श्राविकाओं की ओर से
卐 श्री जैन श्वेताम्बर खरतरगच्छ संघ, हैदराबाद
卐 श्रीमती मोहिनीदेवी भंवरलालजी मांगीलालजी कुशलकुमार संखलेचा, फलोदी–अक्कलकुआं
卐 श्रीमती शकुन्तलादेवी धर्मपत्नी स्व. श्री उगमराजजी कमलेश अनिल गुगलिया, पाली–देवाली
卐 श्री प्रकाशचंदजी पंकजकुमारजी मनिषकुमारजी महावीरजी भंडारी, सोजतरोड–इचलकरंजी
卐 श्री मांगीलालजी ललितकुमार बेटा पोता खीमराजजी भीखचंदजी छाजेड, रामसर–इचलकरंजी
卐 श्री संपतराजजी सौ. चंचलदेवी पुत्र अभिषेककुमार रवीन्द्रकुमार बाबेल, बिजयनगर
卐 मातुश्री मोहिनीदेवी की प्रेरणा से श्री ओमप्रकाशजी रमेशकुमारजी सुनिलकुमारजी बैदमुथा, कवास वाले–इचलकरंजी
卐 श्रीमती पुतलाबाई इन्द्रभानजी पुत्र शा. पृथ्वीराजजी पौत्र चेतनकुमारजी बोरा, नाशिक रोड
卐 शा. पुखराजजी दिनेशकुमार उगमराज पुत्र पौत्र उदयचंदजी ललवानी, सिवाना–इचलकरंजी
卐 श्रीमती शांताबेन हरखचंदजी बोथरा, सांचोर–मुंबई
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की प्रेरणा से स्थापित श्री मणिधारी महिला मंडल, इचलकरंजी
卐 श्री राजस्थानी जैन श्वे. मूर्तिपूजक संघ, इचलकरंजी
卐 श्रीमती शांतिदेवी जसराजजी बालड, असाडा–इचलकरंजी
卐 पूजनीया साध्वी श्री हेमप्रभाश्रीजी म.सा. की शिष्या पूजनीया साध्वी श्री श्रद्धांजनाश्रीजी म. {बिबी म.} की पावन प्रेरणा से उनकी 28वीं दीक्षा तिथि के उपलक्ष्य में एक गुरुभक्त
卐 मातुश्री धापुदेवी चंदनमलजी पुत्र खूबचंदजी की स्मृति में शा. खुशीरामजी बोहरा हाला वाले, फालना–तिरूपुर
卐 श्री माणकचंदजी तिलोकचंदजी प्रवीणचंदजी पूनमचंदजी झाबक, फलोदी–कोयम्बतूर
卐 श्री प्रसन्नचंदजी भरत गर्व गोलेच्छा, भरत एण्ड कंपनी, फलोदी–चेन्नई

卐 शा. बंशीलालजी प्रकाशचंदजी राजेन्द्रकुमारजी गौतमचंदजी कटारिया, बिलाडा–रेनिगुण्टा
卐 शा. सुरेशचंदजी दिनेशकुमारजी महावीरचंद गौतम डोशी परिवार, ब्यावर–चेन्नई
卐 शा. थानमलजी तिलोकचंदजी अशोककुमारजी बेटा पोता शंकरलालजी जावाल वाले, चेन्नई
卐 श्री नीरजजी जैन धर्म पत्नी श्रीमती सौ. नीतादेवी पुत्र गवीश पुत्री भाविनी जैन नई दिल्ली
卐 पू. मुनि श्री मलयप्रभसागरजी म. एवं पू. साध्वी श्री प्रियमुद्रांजनाश्रीजी म. की दीक्षा के उपलक्ष्य में श्री बस्तीचंदजी महिपालचंदजी कानूगो, फलोदी–चेन्नई
卐 स्व. जम्मूदेवी ताराचंदजी पुत्र प्रकाशचंदजी अशोककुमारजी संकलेचा, समदडी–जोधपुर
卐 श्रीमती शकुन्तलादेवी धर्मपत्नी स्व. श्री उगमराजजी कमलेश अनिल गुगलिया पाली टेवाली राज.
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की शिष्या पूजनीया डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से मातुश्री रत्नाबाई की पुण्यस्मृति में 卐 पिताश्री उत्तमचंदजी सुपुत्र विनयकुमार सुपौत्र मौलिककुमार भंसाली, रायपुर–छ.ग.
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की शिष्या पूजनीया डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से मातुश्री जीयाबाई मोतीलालजी सुपुत्र डॉ. धर्मचंदजी मधुबेन रामपुरिया परिवार, रायपुर–छ.ग.
卐 स्व. पिताश्री फूलचंदजी चौपडा की स्मृति में मातुश्री कस्तुरीदेवी चोपडा की जीवराशि क्षमापना के उपलक्ष्य में नरेन्द्रकुमार डोंगरमल चोपडा, दुर्ग–छ.ग.
卐 पू. खान्देश शिरोमणि महत्तरा श्री दिव्यप्रभाश्रीजी म. के 75वें जन्म दिवस एवं 65वें दीक्षा दिवस के उपलक्ष में उनकी शिष्या पूज्या साध्वी श्री विरागज्योतिश्रीजी म. पू. साध्वी श्री विश्वज्योतिश्रीजी म. की प्रेरणा से श्री महावीर स्वामी जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक श्राविकाऐं, फीलखाना हैदराबाद की ओर से
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. द्वारा संस्थापित श्री पार्श्व कुशल प्रतिक्रमण ग्रुप राजनांदगांव के ज्ञान खाते से
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से स्व. श्री भंवरलालजी कोचर के आत्मश्रेयार्थ धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रादेवी कोचर की प्रेरणा से सुपुत्र महेन्द्रकुमार तरूणकुमार कोचर परिवार, रायपुर
卐 पूजनीया बहिन म. डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म. की सुशिष्या पू. डॉ. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म. की प्रेरणा से पुखराजजी छोटाबाई कोठारी की स्मृति में पुत्र गौतमचंदजी मीनादेवी कोठारी परिवार, रायपुर

श्रुत सहयोगी

- श्री मदनलालजी भंवरलालजी बोथरा, बाडमेर–इचलकरंजी
- श्री बाबुलालजी मुलतानमलजी मालू, बाडमेर–इचलकरंजी
- श्रीमती शांतिप्रभा रंगरूपमलजी लोढा, चेन्नई
- श्री दिनेशकुमारजी बाबूलालजी मालू, हरसाणी–इचलकरंजी
- श्री फूलचंदजी टेकचंदजी छाजेड, डुठारिया–पूना
- श्री पारसमलजी सूरजमलजी छाजेड, डुठारिया–पूना
- श्री फरसराजजी महावीरचंदजी सिंघवी, बाडमेर–इचलकरंजी
- श्री विजयराजजी महेन्द्रजी कटारिया, बिलाडा–मैसूर
- श्री मुकेशकुमारजी मोहनलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
- श्री अशोककुमारजी भंवरलालजी संखलेचा, बाडमेर–इचलकरंजी
- श्री दिपककुमार मितकुमार कुंकु चोपडा, पचपदरा

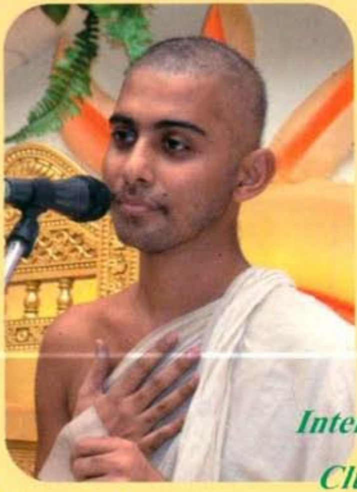

नारी वह है, जिसके पास...

माता - पिता के लिए समर्पण है...

सास - ससुर के लिए सेवा है...

पति के लिए शील और सदाचार है...

संतान के लिए संस्कार है।

वर्तमान के बदलते परिवेश ने नारी की इस
सुन्दर परिभाषा को बदल कर रख दिया है।
Internet, Mobile, Beauty Parlour, Kitty Party, Club, Dance ने उसके जीवन के लक्ष्य और पुरूषार्थ
की राह, दोनों को अवरूद्ध कर दिया है।
Modernity और **Personality** की चाह में **Humanity** व
Quality का **Standard** गिरता जा रहा है। **Prestige** ओर **Status**
के घने कोहरे से घिरे अंधकारपूर्ण भविष्य को
मांजने और सजाने का सत्प्रयास है - सत्य का अमिट सौन्दर्य ।

काश ! कोई इसमें बताये नक्शे कदम पर
चलने का साहस और संकल्प तो जुटाये..... ।

मुनि मनितप्रभसागर